प्रभु का दर्शन कैसे?

तथा अन्य आध्यात्मिक प्रश्नों के उत्तर

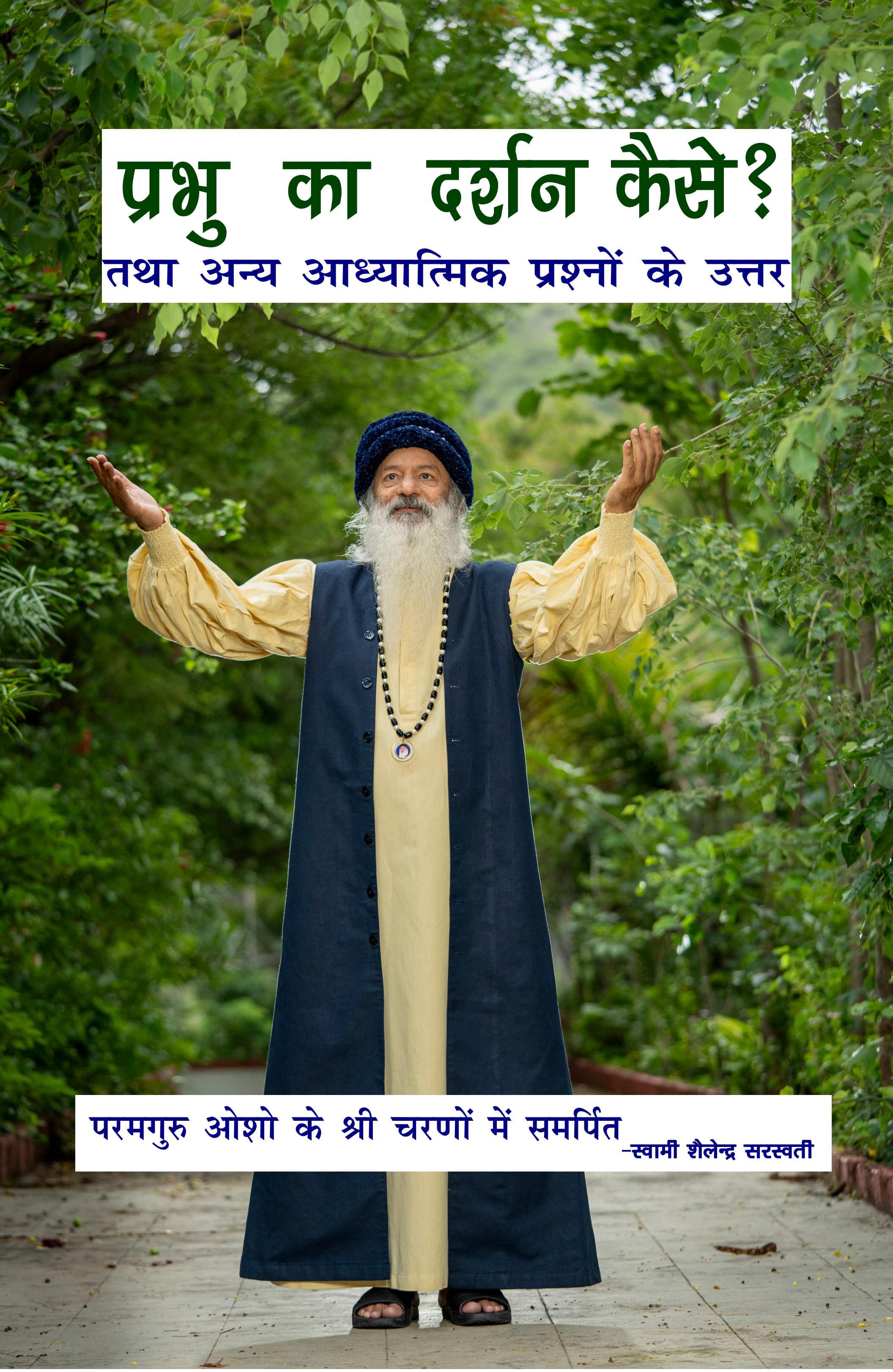

परमगुरु ओशो के श्री चरणों में समर्पित

–स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565
+91-7988969660
+91-7015800931

भूमिका

आदिकाल से जब से मनुष्य ने होश संभाला है तभी से उसके भीतर यह प्रश्न उठता रहता है कि इस सृष्टि का निर्माता कौन है? ये पृथ्वी, ये सूरज, ये चांद; आसमान में चमकते हुए असंख्य सितारे; ये बिजली, बादल, हवा–पानी; पेड़, पक्षी, पशु और मनुष्य–आखिर इन सब का कोई तो सर्जक होगा? उसी को नाम दिया–भगवान या परमात्मा। अब प्रश्न उठा कि वह परमात्मा कैसा है? कहां है? उसका स्वरूप क्या है? आदि ग्रन्थ ऋग्वेद से लेकर आज तक असंख्य शास्त्र रच दिए गए जिनमें इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया गया कि परमात्मा क्या है? फिर भी आज तक मनुष्य इन उत्तरों से संतुष्ट नहीं हो पाया है।

कोरे शब्दों या बड़ी–बड़ी व्याख्याओं से संतुष्ट हुआ भी नहीं जा सकता। अंधे को कितना ही समझाया जाए कि सूरज है और उसका प्रकाश है, भला वह कैसे मान जाए? उसको तो कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसको मनवाने का एक ही आधार है कि उसकी आंखों का ऑपरेशन करवा दिया जाए। वह स्वयं सूरज को और उसके प्रकाश को देख लेगा, तब वह स्वतः ही मान जाएगा। फिर उसे किसी प्रकार के तर्क की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

परमगुरु ओशो कहते हैं कि सूरज निकलता है और तुम पूछते हो कि सूरज का प्रमाण क्या है? इससे सिर्फ यही बात सिद्ध होती है कि या तो तुम अंधे हो, या तुमने आंखें बंद कर रखी हैं। वे कहते हैं कि तुम प्रेम से भरो तो परमात्मा है। थोड़ा सा प्रेम तुम्हारे भीतर जगे तो ही तुम्हारे भीतर परमात्मा को पहचानने वाली आंख खुलेगी। प्रेम ही परमात्मा का एकमात्र प्रमाण है।

परमात्मा तो हर जगह व्याप्त है। कहते हैं कण–कण में परमात्मा है। कहना चाहिए कण–कण ही परमात्मा है। वेद वचन है–'ईशावस्यं इदं सर्वं यत्किंचित जगत्याम् जगत' अर्थात् जहां तक दृश्य अदृश्य जगत है, उस सबमें ईश्वर का वास है। 'प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रकट होई मैं जाना'। परमात्मा सर्वत्र और समान रूप से विद्यमान है। किन्तु वह केवल प्रेम में ही प्रकट होता है।

प्यार की छांव तले, कोई तो गांव बसे।
प्रीत संगीत बजे, मीत का गीत सजे।।

यदि सर्वत्र प्रेम छा जाए तो सर्वत्र परमात्मा के दर्शन हो जाएं।

हर गीत भावना का मन्दिर, अपने प्राणों का अर्चन है।
हर पंक्ति स्वयं में पावनता, जग प्रेम ज्योति का वंदन है।

सर्वत्र प्रेम की ही ज्योति जल रही है। किंतु यह ज्योति उसी को दिखाई देगी जिसकी आंख खुली है।

ओशो के अनुज, ओशो शैलेन्द्र जी उन्हीं संबुद्ध पुरुषों में है जिनकी आंख खुल गई है।

जिनकी आंख खुली है वही अंधों को मार्ग दिखा सकते हैं। एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बड़े ही विनम्र एवं सहज भाव से स्वीकार किया है कि उनकी आंख खुल गई है। वे कहते हैं– "ओशो का भाई होने के नाते बचपन से ही उनकी आध्यात्मिक छत्रछाया में जिया। लेकिन 19 जनवरी 1998 को ओशो के निर्वाण दिवस पर ओशो की कृपास्वरूप, जब मेरे भीतर अनायास कुछ अनुभूति आरम्भ हुई, और तीन महीने बाद ओशो सिद्धार्थ जी ने रहस्य उजागर किया तब पता चला कि मैं धर्म की मूल देशना ओंकार को अब तक समझ नहीं पा रहा था। ओशो जो गहरे राज की बात बताना चाह रहे थे, 'मौन संगीत' के विषय में जो संकेत कर रहे थे, वे मेरे सिर के ऊपर से निकल रहे थे।"

"फिर मेरे जीवन में अचानक मोड़ सा आया, समाधि लगनी शुरू हो गई और क्रमशः लगते–लगते 5 जनवरी 2001 को परम जागरण की घटना घटी। और तब से मेरा सारा जीवन ही बदल गया। अब मैं वही नहीं हूं जो पहले था। पुराना विदा हो गया, कुछ नया ही घटित हुआ। बहुत आनन्द, बहुत प्रेम, बहुत शान्ति भीतर छा गई। सब समस्याएं जैसे तिरोहित हो गईं। जिन्दगी के महत्त्वपूर्ण सवालों का समाधान मिल गया और तब से एक नई पीड़ा शुरू हुई– करुणा की पीड़ा। दुनिया में इतने सारे दुखी लोग हैं, परमानन्द का खज़ाना सबके भीतर है। कैसे दौड़–दौड़कर उस खज़ाने की चाबी लगाना उनको समझा दूं ..... और तब से बस उसी श्रम में लगा हुआ हूं।"

ओशो शैलेन्द्र जी प्रेम, आनंद और शान्ति का खज़ाना जान चुके हैं, इसलिए अब सबको बताने को आतुर हैं। वे कहते हैं... परमात्मा दृश्य नहीं द्रष्टा है। ऑब्जेक्ट नहीं सब्जेक्ट है। स्वयं के प्राणों के केन्द्र में जो ओंकार रूपी परम संगीत गूंज रहा है, और अंतर–आकाश में जो दिव्य आलोक छाया है, उसकी प्रतीति ही आत्म–दर्शन है। यही ब्रह्म–साक्षात् है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, वह एक ऊर्जा है, एक शक्ति है हमारे भीतर। अपने ही भीतर डूबकर उस द्रष्टा को जानना, उसको पहचानना ही प्रभु मिलन कहलाता है।

'सोई जानई जेहीं देहु जनाई,
जानत तुम्हई तुम्हई होइ जाई'

जिसके ऊपर परमात्मा कृपा कर दे वही उसको जान सकता है। और जानने के बाद वह स्वयं ही परमात्म–स्वरूप हो जाता है।

तो आइये! इस पुस्तक के पन्ने खोलें। इसके एक–एक पन्ने पर परमात्मा की पुकार आपको आमंत्रित करेगी। उसके परम संगीत, अनहद नाद को सुनें और उसमें विलीन हो जाएं। ओशो शैलेन्द्र जी कहते हैं कि परमात्मा यानि आत्मा का परम स्वरूप। उसकी मूल प्रकृति साक्षी होने की है। वह दृश्य नहीं, द्रष्टा है। अतः द्रष्टा–भाव अर्थात् ध्यान साधो, और अपने भीतर विराजमान परमात्मा को जान लो। 'दर्शन' की जगह 'ज्ञान' का एवं, 'देखने' के स्थान पर 'जानने' शब्द का प्रयोग, प्रभु के संदर्भ में ज्यादा उचित होगा।

–ओशो प्रांजलि, संपादिका

अनुक्रम

1. परमात्मा का प्रमाण 6
2. समझ ही सुलझाव है 16
3. अप्रगट विचार और प्रगट वाणी 26
4. गुनगुनाती शांति, नाचता मौन! 36
5. संवेदनशील बनो और सुनो! 46
6. ध्यान, प्रेम, कर्म और धर्म 56
7. अहम् एवम् ब्रह्म 66
8. माया–मोह से मुक्ति 80
9. परमात्मा का दर्शन कैसे? 90
10. स्वर्ग–नर्क और प्रभु–कृपा 98

प्रवचन–1

परमात्मा का प्रमाण

प्रश्नसार–

1. एक तार्किक व नास्तिक युवक की जिज्ञासा
2. क्या सभी महान धर्मशास्त्र झूठे हैं?
3. शांति की झलक के बाद आगे का मार्गदर्शन?

प्रश्न–1: मैं एक तार्किक व नास्तिक युवक हूं। पूछना चाहता हूं कि परमात्मा के अस्तित्व का प्रमाण क्या है तथा ध्यान, योग, समाधि आदि विधियों की आवश्यकता क्या है?

–डा.गौरव पंत

गौरव, तुम्हारे प्रश्न से ही स्पष्ट होता है, कि तुम्हारे पास वह आंख नहीं प्रेम की, जिससे परमात्मा का दर्शन होता है। परमात्मा के अस्तित्व का क्या प्रमाण हो सकता है? यदि हमारी आंख ही नहीं तो सूरज का क्या प्रमाण होगा?

रामकृष्ण परमहंस के पास एक नास्तिक व्यक्ति आया। रहा होगा तुम्हारे ही जैसा– बड़ा तार्किक, बड़ा दार्शनिक, बड़ा विवादी। और उसने खूब–खूब तर्क दिए परमात्मा के खिलाफ। रामकृष्ण ने उसके किसी भी तर्क का जवाब नहीं दिया बल्कि बीच–बीच में उठकर वे उसे गले लगा लेते, उसे बड़ा प्रेम करते। उसके सिर पर हाथ फेरते। वह और भी क्लिष्ट व जटिल तर्क देता, सिद्ध करता कि परमात्मा नहीं है और रामकृष्ण बहुत प्रसन्न होते। और फिर–फिर उठकर उसको बड़े प्रेम से सीने से लगा लेते, उसके गाल पर हाथ फेरते और कहते– अहा, कितना सुंदर तर्क तुमने दिया। थोड़ी देर बाद वह नास्तिक बोला– आप भी अजीब आदमी हैं, मैं तो लड़ने के लिए आया था कि आप कुछ कहेंगे तो मैं आपकी बात काटूंगा। मैं तर्क पर तर्क दिये जा रहा हूं, आप कुछ बोलते क्यों नहीं? रामकृष्ण ने कहा कि तुमसे बड़ा तर्क और क्या होगा परमात्मा के होने का? तुम्हारी इतनी प्रखर मेधा, इतनी तीक्ष्ण बुद्धि, इतने पैने तर्क, तुम्हारी यह इंटेलिजेन्स, यह बुद्धिमत्ता, यह विवेक आया कहाँ से? यही तो प्रमाण है परमात्मा के होने का। वह नास्तिक उनके चरणों में गिर गया। उस बेचारे ने तो कभी सोचा ही नहीं था कि 'मेरा होना उसका प्रमाण है' और कैसा प्रमाण मैं खोजता हूं?

गौतम–बुद्ध के पास एक बार गांव के कुछ लोग आए, एक अंधे आदमी को लेकर। उन्होंने कहा कि आप इसे समझाइये। हम तो इसे समझा–समझा कर थक गए, यह कहता है कि 'कोई सूरज नहीं है, चांद–सितारे इत्यादि कुछ होते नहीं; तुम लोग मुझे अंधा सिद्ध करने के लिए ये सब मनगढ़ंत बातें बताते हो। कहीं कोई प्रकाश नहीं है।' यह जन्मजात अंधा है। इसको हम समझा नहीं पाते कि प्रकाश होता है। बल्कि उलटा यह सिद्ध करने की कोशिश करता है कि प्रकाश है ही नहीं, तुम किसी भ्रांति में हो।

बुद्ध ने कहा गलती तुम लोगों की है। अंधे को समझाना नहीं होता कि प्रकाश है, उसकी आखों का उपचार कराना होगा। वह बेचारा ठीक ही तो कहता है, तुम्हारे तर्कों से साबित नहीं होता प्रकाश का होना। गौतम बुद्ध के पास एक बहुत प्रसिद्ध वैद्य था उस समय का। बुद्ध ने उस वैद्य को बुलाया और कहा कि देखो, क्या इसकी आखों का उपचार हो सकता है? उसने जांच की। उसने कहा कि इलाज संभव है, इसकी आखों पर एक जाली है। छोटी सीं सर्जरी से, शल्य–क्रिया से वह जाली निकल सकती है, कुछ दवाइयों से घुल जाएगी और तब यह देखने में सक्षम हो जाएगा। कोई छः महीने तक इलाज चला, उसकी आखें ठीक हो गईं। और तब वह बहुत खुश होकर बुद्ध के चरणों में आया और बोला कि हद हो गई, पिछले पचास साल से मैं जिद्द करता रहा कि प्रकाश नहीं है, ये लोग मुझे समझाने की कोशिश करते थे, और मैं हूं तार्किक, बुद्धिमान; मैं कोई बात मानने को तैयार नहीं जो मेरे अनुभव में नहीं आती। आपने बड़ी कृपा की, प्रकाश के पक्ष में तर्क दिए बगैर आपने मेरी आखों का इलाज करवाया। अब मैं जानता हूं कि प्रकाश है। बिना किसी के समझाए जानता हूं।

डा. गौरव पंत, वहीं मैं तुमसे कहना चाहूंगा वह कौन सीं आंख है हमारे भीतर जिससे परमात्मा जाना जाता है। वह प्रेम की आंख है। यदि वह नहीं है तो कहीं कोई परमात्मा नहीं है।

सुनो, ओशो क्या कहते हैं–

‘सूरज निकला है और तुम पूछते हो कि सूरज का प्रमाण क्या है? तो हम यही कहेंगे कि आंख खोलो और देखो; और कोई प्रमाण नहीं है। सूरज निकला है और तुम पूछते हो कि कि सूरज का प्रमाण क्या है? इससे सिर्फ एक ही बात सिद्ध होती है, कि या तो तुम अंधे हो या फिर तुमने आंखें बंद कर रखी हैं। और दूसरी ही बात सच है। अंधा तो कोई पैदा हीं नहीं होता; आध्यात्मिक अर्थों मे(कभी कोई अंधा पैदा नहीं होता। आध्यात्मिक अर्थों में हम केवल आंख बंद किये बैठे हैं और अपने आप को अंधा मान बैठे हैं।

......थोड़ा सा प्रेम तुम्हारे भीतर जगे, तो हीं तुम्हारे भीतर परमात्मा को पहचानने वाली आंख पहली बार खुले, पहली बार पलक खुले। तुम प्रेम से भरो तो परमात्मा है, तो हीं परमात्मा है। मत पूछो कोई और प्रमाण, कोई और प्रमाण नहीं है। तुम प्रेम से भरो तो परमात्मा है। फिर प्रमाण ही प्रमाण है। मगर तुम प्रेम से भरो

तो! मैं प्रेम को परमात्मा का एकमात्र प्रमाण कहता हूं। इसलिए बुद्धों ने संघ बनाए ताकि तुम अकेले न रह जाओ। कुछ संगी–साथी हों कम से कम कुछ ही सही, थोड़ा संग साथ रहेगा, थोड़ी हिम्मत रहेगी, थोड़ा बल रहेगा। एक दूसरे को हिम्मत देने का अवसर रहेगा। बिल्कुल अकेले न पड़ जाओगे।' (प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, प्रवचन 4 एवं 9)

चारों तरफ इस घृणा से भरी दुनिया में प्रेम विकसित करना भी बड़ा मुश्किल है। इसलिए सभी बुद्ध–पुरुष संघ का निर्माण करते हैं। एक कम्यून यानी उन लोगों का समूह जो उनके आस–पास प्रेमपूर्वक रहें, ध्यानपूर्वक रहें। कम से कम वहाँ तो तुम प्रेमपूर्ण हो सकोगे। शिथिल व शांत हो सकोगे। और तब वह प्रेमल आंख धीरे–धीरे खुलनी शुरू होगी। बुद्ध के वैद्य ने तो उस शारीरिक अंधे की आंख का इलाज किया था, किंतु बुद्ध ने स्वयं हजारों आध्यात्मिक अंधों का उपचार किया।

डा. गौरव पंत, तुम्हारी उस आध्यात्मिक आंख को खोलने के उपाय का नाम ही ध्यान है, समाधि है। किसी बाह्य उपचार की जरूरत नहीं, अंतस के जागरण से होगा। तुम और–और जागो। और अधिक चैतन्य तथा संवेदनशील बनो। बस ये दो उपाय हैं– प्रेम और होश। और तब तुम पाओगे उसके दर्शन होने लगे, जो सब तरफ है। मा ओशो प्रिया का गीत सुनो–

प्यार की छांव तले
प्यार की छांव तले, कोई तो गांव बसे;
प्रीत संगीत बजे, मीत का गीत सजे। प्यार की छांव तले...
न कोई शत्रु, न कोई वैरी, कोई न तेरा मेरा हो;
हम सबके हों, सब अपने हों, कोई नहीं अकेला हो।
धर्मों के नाम पे कुछ भी न माने, सतनाम को हम जानें;
तन के मंदिर में ज्योतिर्मय, अंतर राम को पहचानें।
हृदय हो हरिद्वार, तीर्थ हो घर–बार, स्वर्ग बने सारा संसार;
अहोभाव की प्रार्थना गूंजे, धन्यवाद प्रभु बारंबार।
सांझ रास हो, रात हो नीरव, उत्सवपूर्ण सवेरा हो;
ध्यान हो साक्षी, कर्म हो पूजा, ओशो का सपना पूरा हो।

चूंकि बुद्धों के आस–पास प्रेमल लोगों का एक समूह, साधकों का संघ निर्मित होता है, इसलिए वहाँ पर आकर अन्य लोग, नए साधक भी रिलैक्स्ड हो सकते हैं।

वहाँ कोई तुमसे झगड़ा करने नहीं बैठा है, कोई वाद–विवाद करने में उत्सुक नहीं है। एक प्रेम की आबोहवा है, वहाँ धीरे–धीरे तुम भी अपनी प्रेम की आंख खोल सकोगे। ध्यान के अंजन से अपनी आंखों को साफ कर सकोगे। वह जो मूर्च्छा की जाली पड़ गई है, उसे काट सकोगे। अकेले शायद यह कठिन हो! असंभव तो नहीं है लेकिन कठिन जरूर हो सकता है। लेकिन साधकों के सामूहिक ऊर्जा–क्षेत्र में, 'संघं शरणं गच्छामि' भाव के साथ मामला आसान हो जाता है। प्रेमपूर्ण बनो। ध्यानपूर्ण बनो।

सुनो गौरव, एक प्यारा सा गीत तुम्हारे लिए–
तुमने जब–जग की पीड़ा को अपना ही नहीं बनाया है।
जब प्रेम ज्योति की बाती को, नैनों में नहीं जलाया है।
कैसे समझोगे गीतों का, होता मादक आधार है क्या?
जीवन मधुवन करने वाला, होता नैसर्गिक प्यार है क्या?
जब तुमने अपनी चाहों में, सिंदूरी सपने भरे नहीं,
वेदना निरखकर पीड़ित की, आंसू नैनों से झरे नहीं,
जब भूख तुम्हारे जीवन में, आराध्य अर्चना की प्रतिमा।
अपनी तृष्णा की तृप्ति मात्र, जब निज कृतित्व की है गरिमा।
कैसे समझोगे अतंस में, होने वाला विस्तार है क्या?
देवत्व दिला सकने वाला, निज स्वार्थहीन उपकार है क्या?
यह विश्व एक मधुशाला है, पर हृदय सिर्फ पीने वाला।
मादक सी बिखरी कण–कण में, निस्सीम वेदना की हाला।
जब तुमने केवल अधरों से, विष घृणा निगलना सीखा है,
जब तुमने केवल निज मन के, अंगार उगलना सीखा है।
कैसे समझोगे अमृत की, होतीं अनंत रसधार है क्या?
मन में मस्ती भरने वाली, भावों की मृदु झंकार है क्या?
हर गीत भावना का मंदिर, अपने प्राणों का अर्चन है।
हर पंक्ति स्वयं में पावनता, जग प्रेम ज्योति का वंदन है।
जब तुम्हें नियति से मधुर कंठ का, दान नहीं मिल पाया है।
जब तुम्हें प्रकृति से हंसने का, वरदान नहीं मिल पाया है।
कैसे समझोगे गीतों में, झंकृत वीणा का तार है क्या?

संगीत अमर करने वाला, स्वर संगम का उपहार है क्या?
तुमने जब–जग की पीड़ा को अपना हीं नहीं बनाया है।
जब प्रेम ज्योति की बाती को, नैनों में नहीं जलाया है।
कैसे समझोगे गीतों का, होता मादक आधार है क्या?
जीवन मधुवन करने वाला, होता नैसर्गिक प्यार है क्या?

वह परमात्मा अमृत की रसधार है लेकिन भीतर डूबोगे समाधि में तो ही पता चलेगा। वह झंकार भीतर सुनाई पड़ती है। संतो ने उसी को अनहद नाद कहा है। एक अमृत संगीत तुम्हारे भीतर गूंज रहा है, वहीं परमात्मा है। उसे सुनने के लिए मैं कोई तर्क न दूंगा, मैं कोई प्रमाण न दूंगा। हाँ निमंत्रण जरूर दूंगा। मैंने स्वयं सुना है, और हजारों लोगों ने सुना है मुझसे पहले। तुम भी सुन सकोगे। सुनने की विधि बताऊंगा। मैं आंख का उपचार करूंगा। कोई बौद्धिक प्रमाण न दूंगा। आओ और डूबो ध्यान में, प्रेम की वह आंख खोलो।

सूफी फकीर बायजीद के पास एक युवक आया– परमात्मा की तलाश में। शक्ल–सूरत से ही बड़ा पाषाण–हृदय सा दिखता था। बायजीद ने पूछा कि तुमने जिंदगी में किसी को प्रेम किया है? वह कहने लगा कि मैं तो ईश्वर का खोजी हूं, क्षुद्र चीजों से मैं प्रेम नहीं करता। मैं तो विराट की खोज में हूं। बायजीद के चेहरे पर उदासी आ गई। उसने कहा– भाई क्षमा करो, मैं तुम्हारी मदद नहीं कर पाऊंगा। अगर तुमने किसी को भी थोड़ा प्रेम किया होता तो उस प्रेम को और विकसित किया जा सकता था, विराट तक फैलाया जा सकता था। तुम बिल्कुल पत्थर–दिल लग रहे हो। कोई संभावना नजर नहीं आती... तुमने आंखें बिल्कुल जोर से बंद कर रखीं हैं, खोलना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि बिना तुम्हारे सहयोग के आंखें नहीं खोली जा सकेंगी, तुम्हारा सहयोग चाहिए।

सद्गुरु कुछ नहीं कर सकते, यदि शिष्य राजी नहीं है। पंक्तिबद्ध हजारों सद्गुरु खड़े हों, कोई मदद न कर पाएंगे। थोड़े से खुलो डा. गौरव पंत। तुम कहते हो मैं तार्किक व नास्तिक युवक हूं... मैं तुमसे पूछता हूं इससे तुमको कुछ मिला क्या? असली बात तो परिणाम है। इसका परिणाम क्या हुआ? जीवन तो तुम्हारा रूखा–सूखा है। मीरा जैसे तो तुम न नाच सके, नानक जैसे तुमने गीत न गाए, कभी बुद्ध जैसे शांत न बैठे होओगे, महावीर जैसे जागरण और संतोष को न जाना होगा। जो तुम कर रहे हो उसका फल क्या है? कुछ भी तो नहीं। थोड़ा मेरी मान के

भी देखो। थोड़ा ध्यान, प्रेम और समाधि में डुबकी लगाकर तो देखो– शुरुआत में परिकल्पनात्मक भरोसे के साथ ही सही, बस एक हाइपोथेटिकल ट्रस्ट से प्रयोग आरंभ करो। फिर परमात्मा के प्रमाण ही प्रमाण हैं, तुम स्वयं ही उसके प्रमाण हो। अपने भीतर डूबो।

...और याद रखना, मैं तुमसे पूर्ण–श्रद्धा की अपेक्षा नहीं करता। पूर्ण–श्रद्धा तो प्रयोग के अंत में स्वतः आएगी। मैं तर्कों के विरोध में नहीं हूं। नास्तिकता का पक्षधर हूं। बस इतना ही कहता हूं कि नास्तिकतापूर्ण तर्कों पर अटके न रह जाना। जैसे वैज्ञानिक संदेह–सहित हाइपोथेटिकल ट्रस्ट (अनुमानगत श्रद्धा) लेकर अज्ञात के अन्वेषण में उतरता है, ठीक वैसे ही अध्यात्म की खोज में लगो। वैज्ञानिक प्रयोग करता है, धार्मिक योग करता है। योग के दो चरण हैं– पहला ध्यान, दूसरा समाधि। स्वयं को ज्ञान घट जाने के पश्चात ही अनुभवगत श्रद्धा उत्पन्न होती है। वह संदेह–रहित होती है। वह तर्कातीत होती है। नास्तिक होना अशुभ नहीं है, मगर नास्तिक ही रह जाना जरूर बुरा है। नास्तिक होना बुद्धिमत्ता का लक्षण है, लेकिन बुद्धि की सीमा में ही जीवन गुजार देना मूढ़ता है। थोड़े समझदार बनने की दिशा में कदम बढ़ाओ। तुमसे आशा है, उम्मीद है। समझदारी की प्रथम किरण फूटी है, अन्यथा यह प्रश्न भी पैदा न होता!

प्रश्न–2: आपके प्रवचन आस्था चैनल पर सुनता हूँ, बहुत प्रभावित भी होता हूँ, किन्तु आपकी बातें धर्म ग्रन्थों के विपरीत लगती हैं? इतने महान शास्त्रों में जो लिखा है, वह झूठ तो नहीं हो सकता ना?

वह तो झूठ नहीं है। लेकिन आप उसे पढ़कर जो समझ रहे हैं, वह झूठ है। कृष्ण ने जो कहा है गीता में, बिल्कुल ठीक कहा है। लेकिन उसे समझने के लिए कृष्ण जैसी चेतना चाहिए। जब अर्जुन तक नहीं समझ पाया, जिसे गीता कही गई थी, तो पाँच हजार साल बाद आप समझ लोगे? आपको महाभारत की कहानी तो पता है ना कि अन्त में क्या हुआ... जब पाण्डव–बंधुओं की मृत्यु हुई और वे स्वर्गारोहण कर रहे थे तो केवल युधिष्ठिर और उनका कुत्ता मोक्ष में पहुँचे। बाकी के चारों भाई रास्ते में गल गए। अर्जुन भी गल गया, जिसने साक्षात् पूर्णावतार से गीता सुनी थी, वह भी मुक्त ना हो पाया! हाँ, एक साधारण कुत्ता मुक्त हो गया।

महाभारत की कहानी तो यही कहती है कि अर्जुन भवसागर से पार ना हो पाया। सवाल हमारी समझ का है। सवाल यह नहीं है कि शास्त्रों में जो लिखा है, वह ठीक है या गलत। हम उसमें से क्या समझ पाते हैं, सवाल यह है? तो शास्त्रों पर मैं कमेंट नहीं करूंगा। स्वयं की जिंदगी की किताब को पढ़ने के लिए आपको चुनौती दूंगा। वही एकमात्र उपयोगी शास्त्र है।

एक छोटे से उदाहरण से समझें। आप सर्जरी की किताब, मेडिकल कॉलेज की टेक्स्ट–बुक को पढ़कर क्या अपना अपेंडिक्स का ऑपरेशन कर सकते हैं? नहीं कर सकते ना। आपके मोहल्ले में जो डॉक्टर बैठा है, माना कि वह बहुत बड़ा एक्सपर्ट या आविष्कारक नहीं है, बहुत विद्वान चिकित्सक भी नहीं है, साधारण डॉक्टर है। लेकिन उसी के पास जाना होगा। यद्यपि उसने भी इसी किताब को पढ़कर सर्जरी सीखी है, लेकिन ऑपरेशन तो उसी से कराना होगा।

ठीक ऐसे ही शास्त्रों में जो लिखा है वह सर्जरी की किताब के समान बिल्कुल ठीक है। लेकिन आप उसे पढ़कर कुछ लाभ ना उठा सकेंगे। उसका लाभ उठाने के लिए भी किसी जीवित गुरु के पास जाना होगा। एक जीवित डॉक्टर चाहिए, जो आपका ऑपरेशन करे। जिन्होंने सर्जरी की किताब लिखी है, हो सकता है उनका देहांत भी हो चुका हो। उनकी लिखी हुई बात गलत नहीं है। लेकिन उसको प्रायोगिक रूप से प्रैक्टिकली आप कैसे करोगे?

आपको सर्दी–खांसी जुकाम भी हो जाए तो आप यह पागलपन कभी नहीं करते कि खुद ही जाकर मेडिसिन की किताब खरीद ली और स्वयं दवाई ढूंढकर खाने लगे। कि चले गए केमिस्ट की दुकान में और खुद ही ढूंढ़ ली दवाइयाँ, जो पसंद आईं वे उठाकर खा लीं। शास्त्र भी ऐसे ही हैं–केमिस्ट की दुकान जैसे। सब प्रकार की दवाइयाँ हैं उनमें।

गीता को पढ़ो, विषाद योग से शुरू होती है। कर्म योग, संन्यास योग, सांख्य योग और फिर सारे योग... उसमें एलोपैथी भी है, होमियोपैथी की दवाई भी है, आयुर्वेदिक दवाई भी है और तुमने इन सबकी खिचड़ी बनाकर खा ली तो मुफ्त में मारे जाओगे। शायद बीमारी से बच भी जाते, इस मिश्रित दवाई से बच ना पाओगे।

यद्यपि हर दवाई उपयोगी है, याद रखना। मैं यह नहीं कह रहा कि दवाई गलत है। केमिस्ट की दुकान में जितनी भी दवाइयाँ रखी हैं सब काम की हैं। लेकिन आपकी बीमारी क्या है और आपके लिए कौन सी दवाई उपयोगी होगी, उसके लिए

भी एक प्रेस्क्रिप्शन चाहिए। और इसलिए अध्यात्म–जगत में हमेशा जीवित सद्गुरु की आवश्यकता होती है तभी शिष्य को कुछ मिल पाता है। शास्त्र से नहीं मिल सकता। मत पूछें कि क्या जो लिखा है वह झूठ है? इतने लोग मानते हैं तो असत्य कैसे हो सकता है! मुझे याद आ गई नसरुद्दीन की एक कहानी। सुनो–

जनगणना अधिकारी नसरुद्दीन के घर आए हैं। जनसंख्या की जनगणना कर रहे हैं। पूछ रहे हैं कि आपके परिवार में कौन–कौन हैं? वह पुरानी लिस्ट भी रखे हुए हैं। नसरुद्दीन ने बताया कि मैं हूँ, मेरी पत्नी है, यह नाम है, इतनी उम्र है। तीन बेटे हैं, दो बेटियाँ हैं, ये सात लोग हैं।

अपनी पुरानी वोटर्स लिस्ट देकर उन्होंने कहा कि क्षमा करें। आपकी पत्नी की तो मृत्यु हो चुकी है। हमारे रिकॉर्ड के अनुसार वह दो साल पहले मर चुकी है। सामने खड़ी पत्नी बहुत नाराज हो गई। उसने कहा, हद कर दी। मैं आपसे सामने जीवित खड़ी हूँ और आपके रिकॉर्ड में लिखा है दो साल पहले मृत्यु हो गई। बड़ी बहस होने लगी। वह अधिकारी कहने लगा हम आपकी मानें कि रिकॉर्ड की मानें? विवाद छिड़ गया। भोलेपन से नसरुद्दीन ने कहा–अब चुप भी करो बेगम, यह पढ़ा–लिखा आदमी, इतना बड़ा सरकारी अफसर जो कह रहा है उसकी मानें कि तुझ अनपढ़ गंवार की बात पर भरोसा करें? आज से मैं भी तुझे मरा हुआ ही मानूंगा।

शास्त्र में जो लिखा है उसका अर्थ तो हम ही करेंगे ना और हम कितने बड़े अफसर हैं आप खूब अच्छे से जानते हैं। और हम क्या समझेंगे... कितना अर्थ का अनर्थ करेंगे! गीता के ऊपर कम से कम एक हजार प्रसिद्ध टीकाएं हैं। इनके अलावा और भी हैं जो प्रसिद्ध नहीं हैं। एक हजार अर्थ, पढ़ते–पढ़ते दिमाग खराब हो जाएगा आपका। कुछ हाथ नहीं लगेगा। आप इसमें से क्या मानोगे क्या नहीं मानोगे? महात्मा गांधी ने गीता की व्याख्या की है और वे कहते हैं कि गीता अहिंसा का शास्त्र है। महात्मा गांधी ठहरे अहिंसावादी। उन्होंने पूरी इंटरप्रिटेशन ऐसी की–अहिंसा की शिक्षा! और कृष्ण अर्जुन को यही समझा रहे हैं गीता में कि युद्ध लड़। अद्भुत!

लोकमान्य तिलक ने भी व्याख्या की है कि गीता तो कर्मयोग का शास्त्र है। बिल्कुल अलग व्याख्या। वल्लभाचार्य कहते हैं कि गीता भक्ति का शास्त्र है। इनका शंकराचार्य की व्याख्या से आपस में कुछ भी मेल नहीं है। कहाँ तो कृष्ण अर्जुन को

युद्ध करना सिखा रहे हैं, और कहाँ महात्मा गांधी कह रहे हैं अहिंसा का उपदेश है। 'गीता मेरी माता है', महात्मा गांधी कहा करते थे। रोज सुबह–शाम गीता का पाठ करते थे और पक्के अहिंसावादी थे। तुम गीता का कौन सा अर्थ निकालोगे सब तुम पर निर्भर है। कृष्ण का अर्थ तो पकड़ में नहीं आएगा।

शास्त्र गलत नहीं हैं लेकिन शास्त्र का हम क्या अर्थ निकालते हैं, वह जरूर गलत हो जाता है।

प्रश्न–3: मुझे ओशोधारा में आकर शांति की कुछ झलकें मिलीं। ओशोधारा के आचार्यों के प्रति, ओशो के प्रति बहुत अनुग्रह भाव से भरा हूँ? मेरी जिन्दगी के करीब पचास प्रतिशत दुःख कम हो गए हैं, चिन्ताएं भी कम हो गई हैं? आगे मुझे और मार्गदर्शन दें कि मैं क्या करूँ?

बस इसी मार्ग पर आगे चले चलो, तुम्हारे जीवन का अनुभव ही प्रमाण है। तुम कह रहे हो कि 50 प्रतिशत दुःख कम हुए... सिर्फ तीन दिन का कार्यक्रम अटेंड करके। मैं निवेदन करूंगा, छः दिन के पूरे ध्यान समाधि कार्यक्रम में, और हो सके तो बारह दिन तक सुरति समाधि कार्यक्रम में भी भाग लो। तब तुम पाओगे तुम्हारे जीवन के सौ प्रतिशत दुःख समाप्त हुए। कोई दूसरा तुम्हारे दुःख दूर करने वाला नहीं है। तुम्हारी समझ ही चमत्कारी है, तुम्हारे भीतर एक अंडरस्टैंडिंग पैदा होगी। आनन्द प्रज्ञा का अर्थ है, आनन्द की समझ। एक विज़डम पैदा होगी। तब तुम स्वयं ही अपने जीवन में सुख के कारण बन जाओगे। तुम ही दुःख के कारण हो, तुम ही सुख और शांति के कारण हो सकते हो। तुम ही आनन्द के और परमानन्द के कारण भी हो सकते हो। तुम सच्चिदानंद हो।

धन्यवाद! हरिओम् तत्सत्!

प्रवचन–2

समझ ही सुलझाव है

प्रश्नसार–

1. कर चुका खूब पूजन–अर्चन, फिर भी क्यूं बेचैन है मन?
2. निगेटिव विचारों से मिली पीड़ा से मुक्ति कैसे हो?
3. क्रोध के तीन रूप और उनसे बचने के उपाय

प्रश्न–1ः आज का प्रश्न एक कवि महोदय ने पूछा है, नाम है उनका स्वरूप सिंह 'मानव'। लिखते हैं–

पकड़े बहुतेरे गुरु चरण, गया शास्त्र–सिद्धांत शरण,
पर हुए नहीं प्रभु के दर्शन।
यम नियम धारणा प्राणायाम, किया तीर्थ–यात्रा व्यायाम,
मिला नहीं दिल को आराम।
मंदिर–मस्जिद, काबा–काशी, खोजा बहुत घट–घटवासी,
दिखा नहीं कहीं अविनाशी।
कर चुका खूब पूजन–अर्चन, फिर भी प्यासा बेचैन है मन,
कब सुलझेगी यह उलझन?

स्वरूप सिंह 'मानव', तुम जिन दिशाओं में खोजते रहे, वहाँ तो और–और, उलझाव हैं। सुलझाव वहाँ नहीं हैं, जहाँ तुम भटक रहे थे। तुम्हारी सारी यात्रा बहिर्यात्रा थी, और परमात्मा बैठा है तुम्हारे भीतर। तुम अपने भीतर न गए। तुम मंदिर मस्जिद गए, तुम गुरुओं की शरण गए, तुम सिद्धांत और शास्त्रों में उलझे, तुम गंगा स्नान को गए। नहीं, नहीं.... दिशा ही सही नहीं थी! तुमसे कहा किसने था वहाँ जाने को। काश, तुम दादूदयाल की सुनते! सहजोबाई की सुनते! काश, तुम फरीद और कबीर की सुनते! सुनो कबीर साहब तो कहते हैं–

'मोको कहाँ ढूंढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।'

लोग दूर–दूर खोजने जाते हैं, सुदूर सितारों पर उनकी नजर होती है, जबकि परमात्मा स्वयं खोजी के भीतर छिपा है। यह बड़े से बड़ा मजाक है। ओशो इसे कहते हैं– दि कॉस्मिक जोक! सबसे बड़ा चुटकुला यही है कि खोजने वाले 'मानव' के भीतर वह परम–तत्व 'स्वरूप' बनकर छिपा है, जिसे वह खोज रहा है। तो बाहर मिलेगा कैसे? तुम 'सिंह' नहीं हो, 'मानव' भी नहीं हो, तुम तो 'स्वरूप' से वही अविनाशी प्रभु हो।

कभी–कभी ऐसा होता है कि जो लोग चश्मा लगाते हैं वे भूल जाते हैं कि चश्मा पहने हुए हैं। चश्मा पहनकर चश्मे को ढूंढ़ते हैं। तो चश्मा कैसे मिलेगा? कभी नहीं मिल सकेगा। रुक जाओ। ठहर जाओ। चश्मे को ढूंढ़ना बंद करो तो शायद ख्याल आ जाए कि अरे, हम चश्मा तो पहने ही हुए हैं!

कबीर साहब फरमाते हैं–

मोको कहां ढूंढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
न मैं बकरी न मैं भेड़ी, न मैं छुरी गंडास में।।
न मैं मंदिर, न मैं मस्जिद, न काबे कैलास में।
न तो कौनो क्रिया कर्म में, नहीं जोग वैराग में।।
खोजी होय जो तुरतै मिलहौं, पलभर की तलाश में।
कहै कबीर सुनो भई साधो, सब सांसों की सांस में।

ये सांस शब्द समझना। बनारस के आस–पास जहाँ कबीर रहते थे, वहाँ भोजपुरी भाषा बोली जाती है। भोजपुरी भाषा में सांस के दो अर्थ है– पहला ब्रीदिंग; और दूसरा अर्थ है गैप, अंतराल। दो सांसों की सांस में अर्थात् दो सांसों के बीच में, मध्य में जो छोटा सा अंतराल है, उस बारीक गैप में, अपने भीतर के उस ठहराव में खोजना जहाँ क्षणभर को श्वास भी रुक जाती है।

'कहै कबीर सुनो भई साधो, दो सांसों की सांस में।'
मोको कहाँ ढूंढ़े रे बंदे मैं तो तेरे पास में।'

परमात्मा निकट से भी निकट है, और यही कारण है कि उसे पाना इतना कठिन हो गया है। यदि वह कहीं एवरेस्ट पर रहता होता तो शायद हम पहुंच गए होते। वह कहीं मंगल ग्रह अथवा शुक्र ग्रह पर होता तो आदमी जरूर उसकी तलाश कर लेता। अहंकार की उत्सुकता सदा बाहर है, दूसरे में है, कठिन और क्लिष्ट में उसे चुनौती महसूस होती है। परंतु परमात्मा कठिन नहीं है। प्रभु की प्राप्ति अत्यंत सरल है।

हमारा रस है– हम सिद्ध कर दें कि हमने कोई बहुत कठिन काम कर लिया, जो कोई दूसरा नहीं कर सकता। आदमी कहाँ–कहाँ जाता है? व्यर्थ के उपद्रव करता है! चांद पर पहुंच गया, अब मंगल पर जाने की तैयारी में है; और यह यात्रा कभी खत्म नहीं होगी। मंगल के आगे और दूसरे ग्रह हैं फिर इस सौर मंडल के बाहर जाने की सोचेगा। जिंदगी की सीमा है, अस्तित्व अनंत है। एक जगह भर वह नहीं जाता– स्वयं के भीतर। अपने भीतर डूबने का आरंभ ही ध्यान है, जहाँ आत्मा से साक्षात्कार होता है। उसकी गहराई का नाम ही समाधि है, जहाँ परमात्मा से मिलन होता है। परमात्मा अर्थात् आत्मा का परम रूप।

मानव जी, बस आपने स्वयं के भीतर न देखा। स्वयं मानव के भीतर न

खोजा, और सब जगह आपने ढूंढ़ लिया। अब चेतो, अब जागो। अब इस भटकन में और न उलझना। तुम पूछते हो कि कब सुलझेगी यह उलझन? तुम चाहो तो इसी क्षण सुलझ सकती है। एक पल भी रुकने की जरूरत नहीं है।

खोजी होय तो तुरतै मिलिहों, पल भर की तलाश में।'

परमात्मा समय के पार है, कालातीत है। जीसस से किसी ने पूछा कि आपके प्रभु के राज्य में सबसे महत्त्वपूर्ण और भिन्न बात क्या होगी? जीसस ने बड़ा विचित्र उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि 'देअर शैल बी टाइम नो लौंगर' वहाँ समय नहीं होगा। परमात्मा समयातीत है इसलिए हम उसे अकाल–पुरुष कहते हैं। वह न जन्मता, न मरता। वह सदा–सदा से है, शाश्वत, इटरनल, सनातन, और वह तुम्हारे भीतर भी मौजूद है। है तो वह सर्वत्र, किंतु निकटतम अपने भीतर तलाशा जा सकता है। जो निकटतम नहीं देख पा रहा, वह दूर कैसे दे पाएगा? लेकिन हम विपरीत साधने की कोशिश करते हैं। तुम गलत दिशा में तलाश रहे थे इसलिए उलझ गए।

सदा अध्ययन–मनन में व्यस्त रहने वाले दार्शनिक महोदय की पत्नी ने बताया कि अपना बेटा चलना सीख गया है। किताबों में नजर गड़ाए हुए वे बोले– कब से? पत्नी ने कहा– अजी चार दिन हो गए। वे हड़बड़ाकर बोले– अरे, पहले क्यों नहीं सूचित किया! अब तक तो वह काफी दूर निकल गया होगा।

आत्मा के खोजी भी काफी दूर निकल गए होते हैं।

डूब रहे जहाज से कूदते हुए प्रसिद्ध तैराक विचित्तरसिंह ने पूछा– यहाँ से धरती कितनी दूर है? कैप्टन ने कहा– तीन किलोमीटर। विचित्तर सिंह ने पूछा– किस दिशा में?

कैप्टन बोला– सरदारजी, गहराई में, नीचे की तरफ।

भीतर गहराई में जाना हमें नहीं आता। ऊपर सतह पर भाग–दौड़ करने में हम कुशल हैं, निपुण तैराक हैं।

हरि की ऊर्जा निरंतर बरस ही रही है... तुम्हारे ऊपर भी, तुम्हारे भीतर भी। और तुम उदास बैठे हो! जो व्यक्ति निकट से निकट को महसूस न कर पाया, वह दूर कैसे महसूस करेगा?

हरि की ऊर्जा बरस रही है, भीगे तन–मन सारा।

हंसा मानसरोवर वासी डोलत फिरे उदासी;

जैसे कोई हरि को खोजन विचरे काबा–काशी।
परमहंस खोजो रे हंसा, गुरु एक निस्तारा।
राम बिना है जीवन सूना, गुरु बिन सब अंधियारा;
नानक दुखिया सारा जग है, सुखिया नाम अधारा।
अंतर ज्योति निरंतर वाणी, पाया प्रीतम प्यारा।
सुन्न महल में उत्सव भारी, अनहद बाजा बाजे;
आतमदीप जले दिन–राती, महफिल गुरु नवाजे।
ओशो सिद्धार्थ हरि रस भींगे, आनंद होत अपारा।

तुम जीवित हो, तुम्हारे प्राण अभी धड़क रहे हैं, इस जीवंतता में तुम अगर भगवत्ता को न पहचान सकोगे तो मंदिर में रखी मूर्ति में, काबा–काशी में कैसे पहचानोगे, जरा सोचो तो सही? अंदर के सुन्न महल में बज रहे अनहद बाजे की धुन नहीं सुन पा रहे, मंदिर के शंखों की ध्वनि और मस्जिद की अजानों में कैसे पहचान पाओगे? जो आत्मदीप की रोशनी नहीं देख पा रहा, वह मंदिरों में प्रज्ज्वलित दीपकों से अपनी अंतरात्मा का अंधेरा दूर न कर सकेगा। यद्यपि मैं नहीं कह रहा हूं कि मंदिर में नहीं है, मूर्ति में नहीं है, वहाँ भी है, लेकिन वह बहुत दूर है। तुम तो निकट भी नहीं देख पा रहे, अपने भीतर।

चंदूलाल के बेटे ने शिकायत की– डैडी, मेरी आंखें खराब हो गईं हैं। चश्मा लगवा दीजिए, कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

मारवाड़ी सेठ ने कहा– आ, मेरे संग बाहर चल। वह देख, वहाँ आकाश में चमकता हुआ गोल–गोल सा क्या दिखाई दे रहा है?

बेटा बोला– डैडी, वह तो सूरज है।

कृपण शिरोमणि पिता ने अपने पुत्र को एक झापड़ रसीद करते हुए कहा– नालायक, चश्मा बनवाकर फिजूलखर्ची कराएगा? जब करोड़ों मील दूर का सूरज साफ–साफ दिखाई पड़ रहा है, तो हरामजादे और कितनी दूर की चीज देखना चाहता है!

दूर देखने की जन्मों–जन्मों की आदत के कारण हमारी निकट की दृष्टि धूमिल हो गई है।

अपने भीतर चलो, लेकिन याद रखना शुरू–शुरू में जब भीतर जाओगे,

विचारों को उहापोह, कल्पनाओं की तरंगें, धारणाएं, विश्वास, भावनाएं, स्मृतियां.. . इन्हीं का जंजाल मिलेगा। लौट मत आना, जल्दी मत करना। ठहरना। रुकना। जैसे हम कुआं खोदते हैं जमीन में तो शुरू में तो कंकड़–पत्थर ही निकलते हैं, रेत–मिट्टी निकलती है। निराश मत हो जाना कि पानी तो मिल ही नहीं रहा। खोदते जाना, खोदते जाना... ध्यान एक खुदाई है.... अपनी ही अंतरात्मा में। खोदते–खोदते एक दिन पानी के झरने मिल जाते हैं, और तब प्यास बुझ जाती है– जन्मों–जन्मों की। परम तृप्ति घटित होती है।

अपने भीतर जाना है। परमात्मा कहीं दूर नहीं है, उसने हमें कभी छोड़ा नहीं है। अगर वह हमें छोड़ देता तो हम होते ही नहीं। लेकिन अकसर धार्मिक लोग गलत दिशाओं में खोजते हैं। वहाँ वह नहीं मिलता, उससे आत्म–ग्लानि और हताशा उत्पन्न होती है। लेकिन अगर तुम समझदार हो तो समझ जाओगे कि दिशा ही गलत थी, तुम्हारा इरादा ठीक है, तुम्हारी अभीप्सा समुचित है, लेकिन गलत दिशा में यात्रा करोगे तो मंजिल तक कभी भी न पहुंच पाओगे। अपने भीतर मुड़ो।

कबीर कहते हैं– 'साधो सहज समाधि भली' यह सहज समाधि कैसे घटित होती है? अपने भीतर स्व–चेतना में डूबकर घटती है। शुरुआत में विचारों के कंकड़–पत्थर मिलेंगे। दमित भावनाओं की चट्टानें मिलेंगी। खोदते जाना, खोदते जाना...चरैवेति–चरैवेति... फिर परमात्म–ऊर्जा का अनंत स्रोत उपलब्ध होगा।

हरि की ऊर्जा वहाँ प्राणों के केन्द्र में, अंतर्तम में बरस रही है, हमारा सारा तन–मन उसी से भींग रहा है, उसी से हम जीवंत हैं। वरना यह जीवन विदा हो जाता। परमात्मा से हम कभी बिछुड़े ही नहीं।

ऐसा समझो एक पेड़ का पत्ता सोचने लगे कि मैं मूल से कट गया हूं, जड़ से दूर हट गया हूं, और जड़ को कैसे खोजूं...? तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। उसे अपने ही भीतर जाना होगा और उसके भीतर जो रसधार बह रही है, उसे पहचानना होगा; वह जड़ों से ही आ रही है। वहाँ से जोड़ बन जाएगा। जोड़ यानी योग। मूल तक वह पहुंच जाएगा। ठीक ऐसे ही परमात्मा भी हमारे भीतर है– वह जो जीवन की रसधार है। अपने भीतर डूबो, और तब तुम पाओगे कभी विरह हुआ ही नहीं था। हमारी सारी खोजबीन व्यर्थ थी। वह तो सदा–सदा से भीतर मौजूद था, है एवं रहेगा।

एक गीत मैं पढ़ रहा था, बड़ा प्यारा लगा–

'जब–जब होती हूं उन्मन, विरह व्याकुल होता तन–मन
तब–तब प्रिय तुम आ जाते हो, मृदु मादक प्यार लुटाते हो।
जब सूनापन गहराता है, जगती के कोलाहल से
तब मन कहीं दूर भटकाता है, तब उस सन्नाटे में मानो
तुम चुपके से आ जाते हो,
मौन पड़ी मन वीणा को, फिर से झंकृत कर जाते हो।
जब नीलाबंर श्यामल होता, गर्जन–तर्जन के तांडव में
आशा–सूरज खो जाता है, तब सहसा अरुणाचल में तुम
सूरज बनके मुस्काते हो,
बाहों के घेरे में लेकर तुम, उजियाले में ले आते हो।
जब कभी न भाती नीरवता, तब सहम अकेला मन मेरा
आकुल सा टेर तुम्हें देता, ओ मेरे मन मीत कहाँ से
तुम उस पल आ जाते हो,
इन प्यासे प्राणों को अपने, प्राणों के संग लिपटाते हो।
मैं तुमसे कोसों दूर भले, तुम मेरे पास रहे हर क्षण।
ज्यूं बाती में हो ज्योति, और ह्रदय में बसती हो धड़कन।
तुम भी कहते हम दूर कहाँ, ये ओंठ मेरे दोहराते हैं।
इस जन्म विरह की बात न कर, ये जन्म–जन्म के नाते हैं।

अपने घटे के भीतर तलाशो। जनम–जनम से, अनादि–काल से हम उससे ही जुड़े हैं। मैं तुमसे कोसों दूर भले, तुम मेरे पास रहे हर क्षण... यही मैं तुमसे कहना चाहता हूं। मानव, परमात्मा एक क्षण भी हमसे विलग नहीं हुआ। परमात्मा यानी अंतरात्मा, हमारा ही स्वरूप। विलग होना भी चाहे तो नहीं हो सकता। वस्तुतः दो हैं नहीं, एक ही है। हम कितना ही बाहर भटकते रहे हों, वह भटकन भी सपने की भटकन है।

ऐसे समझो कि तुम दिल्ली में सो गये, तुमने सपना दो कि पहुंच गए मुंबई। और तुम पूछो कि अब वापस कैसे लौटूं मुंबई से? बड़ी उलझन में फंस गया। किस फ्लाइट को पकड़ूं? कौन सी ट्रेन या बस पकड़ूं? कि पैदल चल दूं या घुड़सवारी का इंतजाम करूं... कि क्या करूं? सिर्फ इतना करो कि जाग जाओ। और तुम

पाओगे कि तुम जहाँ पहुंचना चाह रहे थे, वास्तव में तुम वहीं हो। एक क्षण के लिए भी वहाँ से कभी हटे न थे। परमात्मा हमारा परम–मूल है, स्वभाव है और परमात्मा ही हमारा परम गंतव्य है। वही उद्‌गम है और वही लक्ष्य भी। जैसे सागर बादलों का स्रोत है और मेघ वर्षा से जन्मी सरिताओं का गंतव्य भी, वैसे ही परमात्मा हमारा आदि–मध्य–अंत, हमारा सर्वस्व है। अभी इसी क्षण अपने भीतर डूबो और पाओ।

अंतस में डूबने की कला ही ध्यान है। धीरे–धीरे सीखना शुरू करो। क्रमशः कुआं खोदो और एक दिन जल स्रोत मिल जाएंगे। और तब तुम सदा–सदा के लिए तृप्त हो जाओगे। मत पूछो कि कब सुलझेगी यह उलझन? तुम चाहो तो क्षणभर में सुलझ जाएगी, तुम ना समझो तो जन्मों–जन्मों न सुलझे। थोड़े समझदार बनो। समझ ही सुलझाव है।

जिससे डरते थे वही बात हो गई

प्रश्न–2: मैं कभी–कभी निगेटिव विचारों से पीड़ित रहता हूं। इनके कारण मुझे बहुत दुःख भी होता है, क्या करूं?

अगर तुमने विचारों से लड़ना चाहा वे कभी तुम्हारा पीछा न छोड़ेंगे। तुम जिससे दुश्मनी लोगे, वह सदा के लिए तुम्हारे साथ हो जाएगा। मन के इस रहस्य को समझना। जिससे तुमने दुश्मनी ली, तुम उसी से बंध गए। मनोवैज्ञानिक इसे कहते हैं विपरीत परिणाम का नियम। जिससे हम बचना चाहेंगे हम उसी से टकराएंगे। बचपन में आपने साइकिल चलाना सीखा होगा। लंबी चौड़ी सड़क है, पचास फुट चौड़ी, मगर छोटा बच्चा साइकिल चला रहा है। उसके मन में डर आ गया कि अरे ये बिजली का खम्भा किनारे लगा है इससे टकरा न जाउं। जैसे ही यह ख्याल आया, वह सम्मोहित हो गया। उसे बिजली का खम्भा ही दिखाई पड़ने लगा। बस, और कुछ नहीं सूझ रहा। और जब बिजली के खम्भे को देखने लगा तो स्वभावतः उसके हाथ भी मुड़ गए, हैंडल भी घूम गया। साइकिल उसी तरफ जाने लगी, तब वह और घबड़ाया कि अब खम्भे से टकराया, अब टकराया........ शेष पचास फुट चौड़ी सड़क दिखाई पडनी बंद हो गई। केवल बिजली का खम्बा ही उसकी आंखों का केन्द्र बन गया, साइकिल वहाँ गई और टकरा गई। .... जिससे डरते थे वही बात हो गई!

ऐसा ही हमारा मन है। जिससे बचना चाहेंगे हम उसी से टकरा जाएंगे। तुमने अगर विचारों से लड़ने की कोशिश की कि नकारात्मक विचार खत्म हो जाएं, तो तुम उन्हीं में बुरी तरह जकड़ जाओगे। लड़ना स्वयं ही नकारात्मक प्रक्रिया है। मैं आपसे कह रहा हूं कि नई दिशा कुछ विधायक करना शुरू करो। विचार से मत लड़ो, भाव को पैदा करो। निगेटिविटी से मत लडो, पॉजीटिविटी पैदा करो। जहाँ कहीं कुछ विधायक हो सकता है वहाँ अपनी जीवन उर्जा को बहाओ। एक नई दिशा दो।

नकारात्मक से लड़कर कभी विजय हासिल नहीं होती। जैसे एक कमरे में अंधेरा हो और मैं आपसे कहूं इस अंधेरे को बाहर कर दो। आप क्या करोगे? अंधेरे को घूसे मारोगे, कि जूते? तलवार चलाओगे, कि बंदूक? कि पोटली में बांधकर बाहर फेंकोगे! नहीं, अंधेरे के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि वस्तुतः अंधेरा है ही नहीं। अंधेरे का अर्थ है प्रकाश का न होना। उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है। जिसकी सत्ता ही नहीं है उससे कैसे लड़ोगे।

इसलिए अंधेरे के साथ कुछ नहीं किया जा सकता। जब भी कुछ किया जाता है वो विधायक प्रकाश के साथ किया जाता है। हाँ, बल्ब जलाया जा सकता है, एक दीपक जलाया जा सकता है। प्रकाश का अस्तित्व है। उसे हम जला सकते हैं बुझा सकते हैं। अंधेरे के साथ हम कुछ भी नहीं कर सकते। इसका यह मतलब नहीं कि अंधेरा बहुत बलशाली है। लेकिन मगर तुम अंधेरे से लड़ने लगे तुमने धक्का मार–मार के उसको निकालने की कोशिश की तब तुम पाओगे अंधेरा बड़ा शक्तिशाली है और तुम हार जाओगे। लेकिन इसमें बुनियादी रूप से एक भ्रान्ति है। नकारात्मक से लड़ने में हम हमेशा हार जाएंगे। इसलिए मैं क्रोध से लड़ने की सलाह नहीं देता। निगेटिव विचारों से लड़ने की सलाह नहीं देता। मैं कहता हूं विधायक को पैदा करो उसकी तरफ अपना ध्यान ले जाओ। सृजनात्मक कर्मों की और ध्यान लगाओ। धीरे–धीरे दिशा बदलेगी। दीपक जलेगा, प्रकाश होगा और अंधेरा स्वयं मिट जाएगा।

क्रोध से बचने के उपाय

प्रश्न–3: भविष्य के संभावित क्रोध से बचने का, प्रिवेंशन का उपाय बताने की कृपा करें।

अपनी जीवन ऊर्जा को सृजनात्मक कार्यों में संलग्न करें। जिन कामों में आपको आनन्द आता है– जैसे कविता लिखना, खेलना, बगीचे में पौधे लगाना, प्रातः भ्रमण, चित्रकला, नृत्य, गायन, भोजन पकाना..... या किसी भी रसपूर्ण कृत्य में कम से कम एक घंटा प्रतिदिन देना शुरू करें। धीरे–धीरे आपकी शक्ति को एक नई दिशा मिल जाएगी। क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि विध्वंसक भावनाओं में जो शक्ति बहती थी, वह रचनात्मक दिशा में प्रवाहित होने लगेगी। क्रमशः निगेटिव भाव कुम्हलाने लगेंगे और पॉजिटिव भाव फलने–फूलने लगेंगे।

अगर हम किसी नदी पर बांध बनाकर, एक नहर के द्वारा जल को खेतों में सिंचाई के लिए ले जाएं, तो नदी में बहने वाले पानी की मात्रा कम हो जाती है। तब वर्षा में नदी की बाढ़ पहले जैसा नुकसान नहीं पहुंचाती। वही पानी फसल पैदा करने या बिजली उत्पन्न करने के काम आ जाता है। प्रत्येक शक्ति न्यूट्रल होती है। उसका उपयोग कैसे किया जाता है, वह हम पर निर्भर है। परमाणु की ऊर्जा से चाहें तो सारी पृथ्वी को स्वर्ग में रूपांतरित कर सकते हैं, या हिरोशिमा–नागासाकी सा मरघट बना सकते हैं। ऐसी ही हमारी जीवन ऊर्जा है। यदि सृजन में सदुपयोग न किया तो विध्वंस में दुरुपयोग होगा ही।

......यह देखते हैं विद्युत बल्ब जल रहा है, टेबल फैन चल रहा है। अगर गीजर या दो हजार वाट का हीटर ऑन कर दिया जाए तो अभी बल्ब की रोशनी मंद पड़ जाएगी। पंखे की गति धीमी हो जाएगी। क्योंकि हीटर या गीजर बहुत ज्यादा बिजली खींच लेंगे। यदि हम अपनी जीवन ऊर्जा को प्रेम, मैत्री, दया, करुणा, वात्सल्य, शुभ कर्मों, आनन्दपूर्ण कृत्यों एवं सृजनात्मक आयामों में संलग्न कर दें, तो नकारात्मक आदतें स्वतः कम या समाप्त हो जाएंगी। संक्षेप में पुनः दोहरा दूं– अतीत का क्रोध रेचन से, वर्तमान का क्रोध जागरण व स्थगन से, तथा संभावी क्रोध प्रेम व सृजन से मिटेगा।

हरि ओम् तत्सत्! धन्यवाद!

प्रवचन–3

अप्रगट विचार और प्रगट वाणी

प्रश्नसार–

1. सम्यक् वाणी का साधना से क्या संबंध है?
2. परायों से अधिक अपने दुःख देते हैं?
3. ध्यान और प्रार्थना में क्या अंतर है?

प्रश्न–1ः मध्यम मार्ग के प्रवर्तक भगवान बुद्ध के आष्टांगिक मार्ग में एक अंग है सम्यक्वाणी। वाणी का ध्यान–साधना से क्या संबंध है, समझाने की अनुकंपा करें।

–देवराज मल्होत्रा

देवराज, बुद्ध बड़े वैज्ञानिक हैं अध्यात्म के क्षेत्र में। उन्होंने मध्य की बात को पकड़ा। तीन बातों को समझो– एक हमारे जीवन की परिधि है, और दूसरा जीवन का केंद्र है। और इन दोनों के बीच में 'मध्य' है। कर्म हमारे जीवन की परिधि है। चेतना हमारे जीवन का केंद्र है, चेतना की ही ऊपरी सतह चित्त या मन है। और दोनों के बीच में वाणी है। आज जो हमारे भीतर विचार है, कल वही वाणी में प्रगट होता है। परसों वही कर्म बन जाता है। जिस व्यक्ति को कर्म और विचार को साधना हो वह मध्य को पकड़ ले, दोनों छोर उसके हाथ में आ जाएंगे। 'दि गोल्डन मीन' को साध लो। बुद्ध ने जीवन के हर आयाम में कहा– मध्य को साध लो, शेष दो अपने आप सध जाएंगे। कैसे? थोड़ा समझो... जो तुम्हारे भीतर विचार चल रहे हैं वे अप्रगट वाणी हैं। वे भविष्य में कभी वाणी में व्यक्त होंगे। और आज जो तुम बोल रहे हो, याद रखना, वे तुम्हारे प्रगट हो रहे विचार हैं।

तो विचार और वाणी में एक संबंध है। विचार बीज के समान है, जमीन में दबा हुआ, अभी दिखाई नहीं पड़ता और वाणी प्रगट है, जैसे अंकुर आ गया विचार में। कर्म ऐसे हैं जैसे वृक्ष लग गया, फल–फूल भी उसमें आ गए। इन सबमें एक क्रम है– बीज से लेकर फल–फूल तक। मध्य को पकड़ना, अंकुर को। क्योंकि जब चीजें अंकुरित हो रही हैं, यदि तुम चाहो वहाँ आसानी से नष्ट किया जा सकता है। एक बरगद के वृक्ष को उखाड़ना हो तो बड़ी मुश्किल होगी, दर्जनों लकड़हारे लगाने पड़ेंगे। अथवा बड़ी–बड़ी क्रेन लगानी पड़ेंगी उठाने के लिए। आरा मशीन चलानी पड़ेंगी। लेकिन एक छोटे से बीज को नष्ट करना हो, अंकुर को कुचलना हो, तो एक नन्हा–सा बच्चा भी यह काम कर सकता है, एक नाजुक–सा पक्षी भी कर सकता है।

वाणी के प्रति जो सजग हो गया क्रमशः उसकी जागरूकता और घनी होती जाएगी। और अतंतः वह अपने विचारों के प्रति साक्षी हो सकेगा। वह अपने मन का द्रष्टा बन सकेगा। तब उसके पीछे वह अपनी चैतन्यता को, अपनी आत्मा को जान सकेगा। तो बुद्ध क्रमशः एक–एक कदम, एक–एक कदम चलने को कहते हैं। पहले कहते हैं सम्यक्कर्म। फिर कहते हैं सम्यक्वाणी। और फिर बाद में कहते हैं सम्यक्स्मृति, सम्यक्समाधि। क्रमशः बाहर से भीतर की ओर चलो। वाणी उसमें

मध्य में है। और इसलिए वाणी के प्रति जो सजग है, स्वभावतः वह धीरे-धीरे विचारों के प्रति भी सजग हो जाएगा। सीधा किसी से कहो कि विचारों के साक्षी बनो तो हो सकता है उसे कठिन लगे। विचार बहुत सूक्ष्म हैं। पकड़ में जल्दी नहीं आते, जब वाणी में आ जाते हैं कभी-कभी तब ही हमें पता चलता है कि हमारे भीतर यह सब चल रहा था।

जब हम प्रगट वाणी के प्रति सजग होने लगेंगे तो अप्रगट वाणी अर्थात् मन के विचारों के प्रति भी जागरूक होने लगेंगे। समझो कि मेरे भीतर क्रोध आया, तो सबसे पहले तो मेरी चेतना कंपित हुई, फिर मेरे मन में क्रोध के विचार आए, फिर मैंने कुछ उल्टा-सीधा कहा। कहने के बाद फिर मैं कर्म में उतरा, लड़ाई-झगड़ा हो गया, मारपीट हो गई। फिर कर्म की प्रतिक्रियाएं होंगी, प्रतिकर्म होंगे- रिऐक्शन्स, वह दूसरा व्यक्ति भी कुछ करेगा। अब मैं एक ऐसे जाल में उलझ गया जिसमें से निकलना मुश्किल है। अब चीजें मेरे वश के बाहर हैं, वह दूसरा आदमी क्या करेगा? यह मैं नहीं जानता। लेकिन जब तक चीजें मेरे भीतर थीं तब तक मैं उनका मालिक था। काश, जब यह क्रोध का भाव, ये क्रोध के विचार मेरे मन को घेर रहे थे, उस समय मैं जागरूक हो जाता! तो मैं एक अशुभ कर्म से बच सकता था। किंतु विचार और भाव बहुत सूक्ष्म हैं। चलो कोई बात नहीं, जब क्रोध वाणी में आया तब भी अगर सजगता साध ली, तब भी यहाँ से लौटना संभव है। एक बार कर्म में कोई घटना घट गई फिर वहाँ से वापस लौटने का कोई उपाय नहीं है। फिर तो हम उलझ गए कर्म-प्रतिकर्म की श्रृंखला में, ऐक्शन-रिऐक्शन की एक कड़ी शुरू हो गई। तब इस जाल से निकलना अत्यंत दूभर है। इसलिए वाणी पर इतना जोर है।

अपनी वाणी से प्रेम प्रगट होने दो। वचनों में सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् छलकने दो- इन तीन कसौटियों पर अपनी वाणी को कसना। पहला, क्या तुम्हारी वाणी सत्य है, प्रामाणिक है, ऑथेंटिक है? दूसरा, क्या वह शिवम् है, हितकारी है, कल्याणकारी व मंगलदायी है? और तीसरा, क्या वह सुंदर है, मधुर है, सुनने वाले के लिए प्रीतिकर है? यदि इन तीन कसौटियों पर तुम्हारी वाणी खरी उतरती है, तब वह सम्यक्वाणी है।

यदि कभी ऐसा लगे कि इन तीनों कसौटियों पर तो खरी नहीं उतरेगी तो कम से कम दो का ख्याल रखना। तीन में से अगर तुमने दो शर्तें पूरी कर लीं तो भी बहुत है। कभी-कभी हो सकता है वह सत्य नहीं हो किंतु कल्याणकारी और प्रीतिकर हो, तब सत्य की चिंता मत करना। दो कसौटियों पर खरी उतर रही वाणी बोली जा सकती है, बशर्ते कि दो में से एक कसौटी मध्य वाली हो। यदि केवल एक ही कसौटी

पर खरी उतर रही हो तब रुक जाना। अभी बोलने की जरूरत नहीं, क्योंकि ये बोली तुम्हें बहुत उलझाव में ले जाएगी। तुम्हारे जीवन की नब्बे प्रतिशत समस्याएं कुछ गलत शब्दों के कारण शुरू होती हैं। तुमने एक अपशब्द कह दिया और अनजाने में तुम एक जंजाल में फंसे।

मैंने सुना है, किसी कवि ने मायके गई अपनी पत्नी को इस प्रकार पत्र लिखा– एक तुम हो कि कितनी सुंदर हो, सौंदर्य का समुन्दर हो। चौदहवीं का चांद हो या आफताब हो, कितनी भोली–भाली व प्यारी हो, लाजवाब हो! गजब की ईमानदार हो, कितनी मेहनती और वफादार हो! अक्लमंद व सयानी हो, पढ़ी–लिखी ज्ञानी हो! कितना स्वादिष्ट भोजन पकाती हो, कितने तरीके से परिवार चलाती हो! और एक हम हैं नालायक, जो कवि हैं, शराबी हैं; ऊपर से झूठ पर झूठ बोलने के आदी हैं!! श्रीमती जी, मुझे और न सताओ, अब जल्दी घर आ जाओ।

क्या तुम सोचते हो उसकी पत्नी आएगी?

बेगम गुलजान ने अपने शौहर से पूछा– शादी के पहले मेरी इतनी तारीफ किया करते थे, आजकल क्यों नहीं करते?

मुल्ला नसरुद्दीन ने जवाब दिया– पहले मैं नादान, बेवकूफ, बेईमान और झुठल्ला था, अब तुम्हारे सत्संग में सत्यवादी और ज्ञानी बन गया हूं।

ऐसे सत्यवादी और ज्ञानी बनने से बचना– ये सब अहंकार के खेल हैं। लेकिन जिंदगी जटिल है, यदि तीन कसौटियों में से केवल एक ही पूरी कर पाओ तो फिर मध्य का स्मरण रखना– शिवम्, शुभम्, मंगलम्। हितकारी झूठ भी चलेगा, हितकारी कटु वचन भी चलेगा। मगर अहितकारी सत्य और सुंदर नहीं चलेगा।

महाभारत का इतना विराट युद्ध हुआ एक छोटी सी बात से। पांडवों ने एक महल बनावाया था, जिसका फर्श चमकदार अभ्रक का था। फिर दुर्योधन को बुलाया देने के लिए... वास्तव में महल रहने के लिए नहीं होते, दूसरों को जलाने के लिए होते हैं। अगर किसी को ईर्ष्या ही पैदा न हो तो फिर क्या लाभ? तो बुलाया दुर्योधन को, और बेचारे दुर्योधन को पता नहीं कि नीचे चमकदार फर्श है, कांच जैसा। उसे अपनी परछाईं दिखाई पड़ी तो वह समझा कि शायद कुछ पानी पड़ा है। कपड़े गीले न हो जाएं इसलिए उसने अपनी धोती थोड़ी ऊंची उठा ली। द्रौपदी यह देकर हंसी और व्यंग्य–बाण छोड़ा। कहा– अरे, अंधे की औलाद अंधी ही होती है! देवर–भाभी में मजाक होता तो चल जाता, लेकिन अब बात ससुर तक जा पहुंची– धृतराष्ट्र तक– अंधे की औलाद भी अंधी होती है। फिर यही दुर्योधन एक दिन बदला लेता है जब भरी सभा में द्रौपदी को नग्न करता है। वह कहता है कि अब अंधे की औलाद तुझे देखना

चाहती है। बात आगे बढ़ती चली जाती है, एक छोटे से कटाक्ष से शुरू हुई थी, कुछ गलत शब्दों के इस्तेमाल से, फिर बात महाभारत तक जाती है जो शायद आज तक का सर्वाधिक भयानक युद्ध था। भगवान कृष्ण, जिन्हें हिंदू कहते हैं पूर्ण अवतार... वे भी मौजूद थे, उन्होंने भी इस युद्ध को रोकने की कोशिश की, मगर न रोक सके। इसे प्रतीकात्मक समझना कि परमात्मा के भी वश के बाहर की बात हो गई।

तुम खुद टटोलना अपनी जिंदगी में... तुम्हारे अधिकांश लड़ाई-झगड़े, अधिकांश उपद्रव किन्हीं शब्दों की वजह से हुए। काश, तुम थोड़ा सा रुक गए होते! कभी-कभी मौन रह जाना ज्यादा सार्थक और उपयोगी है। मैं आपको वायदा करता हूं आपको चुप रहने के लिए कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ेगा। बोलने के कारण आपने हजारों बार पश्चात्ताप किया होगा कि काश, मैंने ऐसा न बोला होता! इसलिए बुद्ध कहते हैं- अपनी वाणी को लगाम देना सीखो; वही कहो जो कहने जैसा है। वही सुनो जो सुनने जैसा है। कहावत है कि- पुरुषों से कुछ कहो तो एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देते हैं, महिलाओं से कुछ कहो तो दोनों कानों से सुनकर, थोड़ा मिर्च-मसाला लगाकर, मुंह से निकाल देती हैं।

तीन कसौटियां मैंने तुम्हें दीं। कम से कम दो पर तो तुम्हारी बात खरी उतरनी ही चाहिए। कुछ लोग कहते हैं हम तो बड़े सत्यभाषी हैं, हम तो सदा सच बोलते हैं; लेकिन अक्सर वे लोग भी असम्यक्‌वाणी का प्रयोग करते हैं। क्योंकि सच के नाम पर वे दूसरे को चोट पहुंचाने की कोशिश करते हैं। एक अंधे से आपने कह दिया कि 'क्यों बे अंधे, क्या कर रहा है?' आप कहोगे कि झूठ बोल रहा हूं क्या? मैं तो सच बोलता हूं हमेशा। अंधे को अंधा नहीं कहूंगा तो और क्या कहूंगा? आप कह तो सच रहे हो लेकिन वह कल्याणकारी नहीं है और यह प्रीतिकर भी नहीं है। इससे तो अच्छा सच न बोलते, या चुप ही रह जाते तो ज्यादा ठीक रहता। आप इसी बात को दूसरे ढंग से भी कह सकते थे, 'कहिए सूरदास जी, आपके क्या हाल-चाल हैं?' बात वही है लेकिन थोड़े से शब्द बदल गए।

किसी युवती से तुम कहो कि 'बहुत लावण्यमयी हो' तो उसे काव्यात्मक और प्रीतिकर लगेगा, उसकी सुंदरता के लिए प्रशंसात्मक प्रतीत होगा। और तुम कहो कि 'तू लड़की बहुत नमकीन है' तो हो सकता है जूते पड़ जाएं, पिटाई हो जाए। बात वही है- 'लावण्यमयी' और 'नमकीन' शब्दकोश में दोनों शब्द एक ही अर्थ रखते हैं। लवण यानी नमक। लेकिन कहने का सलीका और तरीका बहुत भेद खड़ा कर देता है।

मैंने सुना है कि एक राजा के दरबार में ज्योतिषी आया और उसने हस्तरेखा देखकर कहा कि राजन् आप बड़े दुर्भाग्यशाली हो, आपकी चारों रानियों की अर्थी में

आप ही कंधा दोगे। घोर अनर्थ! रानियां ही नहीं, आपके जितने राजकुमार हैं उन सबको भी मरघट आप ही छोड़कर आओगे। न जाने पिछले जन्मों के किन पापों का फल भुगतना पड़ेगा, आठों पुत्र एवं पांचों पुत्रियां, पुत्र–वधुएं व सभी दामाद भी आपके सम्मुख मरेंगे। बदकिस्मती की हद हो गई...आपके माता–पिता, भाई–बहन, सब आपकी आंखों के सामने ही प्राण तजेंगे। इस समय राज–परिवार में जितने भी सदस्य हैं, सबकी मृत्यु आपके देखते–देखते हो जाएगी। कई पुत्रों के पुत्रों को भी श्मशान घाट ले जाने का दुष्कार्य आपको ही करना होगा। अधिकतर मित्रगणों के दाह–संस्कार में आप सम्मलित होंगे। राजा तो बहुत नाराज हो गया, बोला कि इस आदमी को पकड़कर कारागृह में डाल दो। कल इसका फैसला करेंगे, कल इसे सजा देंगे। थोड़ी देर बाद एक दूसरा ज्योतिषी आया। राजा ने कहा, तुम मेरा हाथ देकर ठीक–ठीक बात बताओ, वह पहले वाला ज्योतिषी क्या–क्या उल्टा–सीधा बक गया है। कल उसके होश ठिकाने लगा दूंगा। उस बदतमीज को कड़ी से कड़ी सजा दूंगा। दूसरे ज्यातिषी ने हस्तरेखा देखी और मुस्कराकर कहा कि महाराज, आप तो परम सौभाग्यशाली हैं, धरती पर आप जैसी आयु पाने वाले लोग दुर्लभ होते हैं। आजकल कलियुग में कौन इतना जीता है! आप तो सतयुगी हैं राजन्। शतायु को भी पार करेंगे, कम से कम सवा सौ साल जिएंगे। राजा ने इस दूसरे ज्योतिषी को, सुंदर–सुंदर इनाम देकर विदा किया। यद्यपि दोनों ज्योतिषियों ने एक ही बात कही थी... अगर यह राजा सवा–सौ साल जिएगा, तो स्वाभावतः बाकी सब प्रियजन उसके सामने मर ही जाएंगे। लेकिन उसी बात को कहने के दो ढंग हो सकते हैं– एक में दंड मिलता है, दूसरे में पुरस्कार।

सम्यक्‌वाणी का प्रयोग न केवल संसार में दूसरों की खातिर बहुत उपयोगी है, अपितु आध्यात्मिक साधकों को स्वयं के आत्म–विकास के लिए भी अनिवार्य है। बहुत सी अनावश्यक उलझनों से तुम्हें बचा देगा। और ऊर्जा बचेगी तो ही ध्यान–साधना में लग पाएगी। सामान्य आदमी की सारी शक्ति तो बस यूं ही खर्च हो जाती है। कुछ बचता ही नहीं अंतर्यात्रा के लिए। ध्यान एक बड़ी से बड़ी यात्रा है, महानतम अभियान है। उसके लिए शक्ति का संवर्धन करना होगा। व्यर्थ अपनी शक्ति को मत बिखेरना। फिजूल के लड़ाई–झगड़ों में मत उलझना, गैर–अनिवार्य बकवास मत करना। वही कहना जो कहने जैसा है, वही सुनना जो सुनने जैसा है। तब तुम्हारे जीवन में अंतर्यात्रा बड़ी आसानी से हो सकेगी।

आओ कुछ सुन लें कुछ अपनी कह लें!
जीवन–सरिता की लहर–लहर, मिटने को बनती यहाँ प्रिये(

संयोग–क्षणिक! फिर क्या जानें हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये?
पल भर तो संग–साथ बह लें, कुछ सुन लें कुछ अपनी कह लें!
आओ कुछ ले लें और दे लें!
हम हैं अंजान पथ के राही, चलना जीवन का सार प्रिये(
पर दुःसह है, अति दुःसह है, एकाकीपन का भार प्रिये।
पल भर हम–तुम मिल हंस–खेलें, आओ कुछ ले लें और दे लें!
हम–तुम अपने में लय कर लें–
उल्लास और सुख की निधियां, बस इतना इनका मोल प्रिये!
करुणा की कुछ नन्हीं बूंदें, कुछ मृदुल प्यार के बोल प्रिये।
सौरभ से अपना उर भर लें, हम–तुम अपने में लय कर लें!
हम–तुम जी–भर खुलकर मिल लें!
जग के उपवन की यह मधु–श्री, सुषमा का सरस वसंत प्रिये!
दो सांसों में बस जाए और ये सांसें बनें अनंत प्रिये।
मुरझाना है आओ खिल लें, हम–तुम जी–भर खुलकर मिल लें!
आओ कुछ ले लें और दे लें! हम–तुम अपने में लय कर लें!
जी–भर खुलकर मिल लें! आओ कुछ सुन लें कुछ अपनी कह लें!

यह छोटा सा जीवन मिला है, इसे जितना सरस बना सको बना लेना। करुणा की कुछ नन्हीं बूंदें, कुछ मृदुल प्यार के बोल प्रिये! जो सुगंध तुम्हारी पंखुड़ियों में छिपी है उसे व्यक्त कर जाना। जिस गीत को गाने इस धरा पर आए हो उसे गाकर जाना। देखतो हो अपने परम सद्गुरु ओशो की वाणी– कितनी करुणामय, कितनी मृदुल, और कितनी सत्य! जिसने उनकी आवाज सुनी वही उनका दीवाना हो गया। वही शब्द हैं जो हम बोलते हैं। वही भाषा है जो हम जानते हैं। मगर उनकी वाणी में कैसा जादू है! एक–एक वचन रसभरा, मधुर, कल्याणकारी, ओज से ओत–प्रोत, असत्य के अंधेरे को चीरकर सत्य की रोशनी बिखेरता हुआ।

हिन्दी में 52 अक्षर हैं, अंग्रजी में तो उसके भी आधे हैं– बस 26; उन्हीं अल्फाबेट्स से गालियां निर्मित हो जाती हैं और उन्हीं से गीत लिखे जाते हैं। उन्हीं का उपयोग करके कोई रवीन्द्रनाथ गीतांजलि की रचना कर देता है। हमारे हाथ में है कि हम कैसा प्रयोग करेंगे– अपनी जिंदगी को एक गीत बनाएंगे या गाली?

संत शिरोमणि कबीर साहब के अमृत–पदों से आज की चर्चा समाप्त करता हूं। इन अनूठे मीठे वचनों को अपने हृदय में स्थान देना–

मीठी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए।

औरन को शीतल करे, आप भी शीतल होए।।
सुख का सागर शील है, कोउ न पाया थाह।
सबद बिना साधू नहीं, दरब बिना नाहिं साह।।
शीलवंत सबसे बड़ा, सब रतनन की खान।
तीन लोक की संपदा, रही शील में आन।।
जाके जिह्वा बंद नहीं, ह्रदया नाहिं सांच।
ताके संग न लागिए, छोड़ो बाटहिं मांझ।।
बोल तो अमोल है, जो कोई बोले जान।
हिंये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आन।।
मधुर वचन है औषधि, कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार होय संचरे, घाले सकल शरीर।।
कागा काको लेत है, कोयल काको देत।
मीठा शबद सुनाय के, जग अपनो करि लेत।।

प्रश्न–2: इस जिंदगी में परायों से कम, अपनों से मुझे ज्यादा दुःख मिला है। क्या यह मेरा दुर्भाग्य है?

नहीं, बदकिस्मती नहीं, यह आपकी कुमति है। यह आपकी दुर्बुद्धि है, दुर्भाग्य नहीं। हमारी नासमझी की वज़ह से दुःख मिलता है। अपनों या परायों का सवाल नहीं है। दुःख का विज्ञान समझें। उसके पीछे क्या मेकैनिज़्म है? दुःख मिलता है अपेक्षा के कारण। एक्सपेक्टेशन की वजह से। परायों से हमें अपेक्षा कम होती है। अपनों से हमें अपेक्षाएं ज़्यादा हैं। बड़ी आशा और उम्मीद है उनसे। जितनी आशाएं–उम्मीदें हैं, उसी रेशियो में, उसी अनुपात में दुःख मिलेगा।

एक उदाहरण से समझें, आप सड़क पर जा रहे हैं। जेब से आपका रूमाल गिर गया नीचे सड़क पर। पीछे आ रहे एक अजनबी आदमी ने आपको उठाकर रूमाल दे दिया। आप बड़े प्रसन्न होकर उसे धन्यवाद देते हैं। अगर यही काम घर में आपकी पत्नी करे, आपका बेटा या भाई करे, तब आप उसे धन्यवाद नहीं देते। ना ही आपको कोई खुशी होती। आप मान कर ही चलते हैं कि यह तो परिवार के लोगों का कर्तव्य है। ये तो उनको करना ही चाहिए। आपका एक्सपेक्टेशन भारी है। अगर रूमाल उठा कर दिया है तो कोई खास बात नहीं हो गई है।

आप ट्रेन में सफर कर रहे हैं। एक अजनबी आदमी ने अपना टिफिन खोला और आपको भी आमंत्रित किया कि आइए हम साथ में चाय–नाश्ता करते हैं। आप बड़े

धन्यवाद भाव से, खुशी से भर जाएंगे। और आपकी पत्नी पिछले बीस साल से और आपकी माँ आपको पिछले पचास साल से सुन्दर–सुन्दर भोजन करा रहीं है, मगर कभी आपके मन में धन्यवाद का भाव नहीं आया। उस में आप शिकायत करते हैं कि आज सब्जी में नमक कम डाला है, चाय में शक्कर डालना भूल गई क्या? रोटी तो बिल्कुल जल गई है।

ट्रेन में जिस आदमी ने अपने टिफिन बॉक्स से खाना निकाल कर खिलाया, उस में आपको जली हुई रोटी नहीं दिखती। उसकी सब्जी में नमक भी कम नहीं लगता, उसके प्रति धन्यवाद का भाव है। वहाँ खुशी मिली। तो खुशी और दुःख का कारण क्या है? खुशी का कारण जहाँ–जहाँ हम धन्यवाद भाव, ग्रैटीट्यूड, अनुग्रह भाव से भरे होंगे वहाँ हमें आनन्द मिलेगा। और जहाँ हम एक्सपेक्टेशन, आशा और अपेक्षा करेंगे, वहाँ हम को दुःख मिलेगा। तो सवाल अपनों या परायों का नहीं है। अगर आपको यह विज्ञान समझ में आ गया कि दुःखी होने का कारण होता है एक्सपेक्टेशन, तब आप अपनों के साथ भी एक्सपेक्टेशन छोड़ देंगे और आपके जीवन में खुशी ही खुशी का संचार हो जाएगा।

प्रश्न–3: ध्यान और प्रार्थना में क्या अंतर है?

ध्यान संकल्प का मार्ग है। अपने भीतर ऊर्जा को जगाना है। स्वयं के भीतर डूबना है। प्रार्थना समर्पण का मार्ग है, पुकारना है। परमात्मा को आवाज़ देनी है। ऊपर से कुछ उतरेगा। एक आरोहण का मार्ग है, दूसरा अवतरण का। ये दो भिन्न–भिन्न मार्ग हैं बिल्कुल। ध्यान में हमें अपने ऊपर भरोसा करके चलना है, आत्म–श्रद्धा! इसमें ईश्वर की भी कोई ज़रूरत नहीं। बुद्ध और महावीर ने दो अनीश्वरवादी धर्मों को जन्म दिया क्योंकि उनकी मुख्य बुनियादी शिक्षा ध्यान की है; ईश्वर की उसमें आवश्यकता नहीं। कुछ दूसरे धर्म हैं हिन्दू धर्म, मुसलमान धर्म, ईसाई धर्म, वहाँ पर ईश्वर मुख्य है। हम प्रार्थना कर सकते हैं, हम पुकार सकते हैं, हम रो सकते हैं, हम निवेदन कर सकते हैं। उसकी कृपा बरसेगी तो कुछ होगा। ध्यान में हमें अपने कर्म पर भरोसा है, प्रार्थना में परमात्मा की कृपा पर। भक्त कहते हैं–हम तो कुछ कर नहीं सकते। हम ठहरे क्षुद्र व्यक्ति, हम क्या करेंगे? वह विराट परमात्मा, जो उसकी मर्जी, वह जो करे। हम निवेदन कर सकते हैं, पुकार सकते हैं, बस। भविष्य में प्रार्थना वाले धर्म खोते जाएंगे। उनकी कोई ज़रूरत नहीं रह जाएगी। ध्यान वाले धर्म धीरे–धीरे फैलते जाएंगे, विकसित होंगे।

हिन्दू धर्म में भी कई धाराएं हैं, जो ध्यान की धाराएं हैं। उदाहरण के लिए तंत्र का

मार्ग ध्यान का मार्ग है। जापान में झ़ेन फकीर हैं। झ़ेन परम्परा ध्यान की परम्परा है। चीन में लाओत्सु का मार्ग एवं यहूदियों में हसीद मार्ग ध्यान का सम्प्रदाय है। यहाँ प्रार्थना की जगह नहीं है। अपने पर भरोसा रखो, तुम्हीं को कुछ करना होगा। अगर ईश्वर या भगवत्ता कहीं है तो वह फूल की तरह है। तुम्हें बीज बोना होगा, तुम्हें पानी सींचना होगा, तुम्हें खाद डालनी होगी। पौधे को बड़ा करना होगा। अंतिम सम्भावना के रूप में ईश्वरत्व या गॉडलिनेस की फ्लावरिंग होगी। मेहनत तुम्हें करनी होगी। इसलिए बुद्ध और महावीर की संस्कृति को श्रमण संस्कृति कहा जाता है। हमें खुद श्रम करना होगा। तब जाकर फूल खिलेगा ध्यान का। इसके ठीक विपरीत प्रार्थना वाले मार्ग पर, हमें कुछ नहीं करना है। हमें तो बस हाथ जोड़कर निवेदन करना है। जब उसकी कृपा होगी, तब होगी। हम प्रतीक्षा करें, हम इन्तजार करें, यह भी एक मार्ग है।

अतीत में प्रार्थना वाले धर्म धरती पर प्रचलित थे। जैसे–जैसे शिक्षा का, विज्ञान का, तार्किक बुद्धि का विकास हो रहा है, वैसे–वैसे प्रार्थना वाले धर्मों की ज़रूरत कम होती जा रही है। अब लोग नाममात्र को मंदिर और चर्च जाते हैं। वास्तव में उनका कोई भरोसा रहा नहीं। तर्क–बुद्धि के साथ प्रार्थना हो नहीं सकती। ऊपर आकाश में विराजमान ईश्वर को मानना बड़ा कठिन जान पड़ता है। उसका कोई प्रमाण नहीं, कोई तर्क नहीं है उसके पक्ष में। वैज्ञानिक बुद्धि उसके खिलाफ होगी। लेकिन भविष्य में झ़ेन सम्प्रदाय, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, तंत्र, ताओ परम्परा, ध्यान एवं योग के जो मार्ग हैं वे फलेंगे–फूलेंगे, वे विकसित होंगे क्योंकि उनमें किसी मान्यता अथवा अन्धविश्वास की ज़रूरत नहीं है। एक तार्किक बुद्धि का वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति भी ध्यान के मार्ग पर चल सकता है।

धन्यवाद!

हरिओम् तत्सत्!

प्रवचन–4

गुनगुनाती शांति, नाचता मौन!

प्रश्नसार–

1. गुरु–चरणों में घटा चमत्कार!
2. अच्छे कर्म का अच्छा फल मिलता है?
3. साधक के लिए शादी सहायक या बाधक?
4. ‘ओशो’ शब्द का क्या अर्थ है?

प्रश्न–1ः स्वामी प्रेम अनुग्रह ने एक कविता के रूप में प्रश्न पूछा है? सच पूछो तो प्रश्न नहीं है, अपने अहोभाव की अभिव्यक्ति है। लिखा है–

जीवन में जबसे ध्यान घटा, मन का सारा शोर मिटा।
बड़ी प्रफुल्लता आई है, क्षण–क्षण में मस्ती छाई है।
मैं कवि हो गया हूं तबसे, कुछ भीतर ऐसा लगता है।
ओशो के चरणों में आकर क्या चमत्कार भी घटता है?
मैंने तो साधा था मौन, फिर गीत गुनगुना उठा कौन?
चाही थी बस चिर–शांति, गूंज उठी कृष्ण की बांसुरी।
यह सच है या भ्रांति मन की, या अभिव्यक्ति पागलपन की?

स्वामी प्रेम अनुग्रह, तुम सौभाग्यशाली हो। यह पागलपन नहीं है। जिसमें आनन्द फले, जिसमें मस्ती आए, जिसमें शांति आए, जिसमें भीतर गीत गुनगुना उठे, अगर ऐसी दीवानगी छाए और दुनिया यदि उसे पागलपन कहे तो भी उसे सहर्ष स्वीकार लेना। ऐसा पागलपन वांछनीय है। तुम संत कबीर, मीराबाई या चैतन्य महाप्रभु जैसे दीवाने हो उठे हो। और कई बार ऐसा होता है कि हम तो होने चले थे शांत, मौन व निर्विचार और अचानक भीतर संगीत से भर जाते हैं। अचानक भीतर से कवित्व प्रकट होने लगता है।

वही तुम्हें आश्चर्य हो रहा है कि ओशो के चरणों में आकर क्या चमत्कार भी घटता है! निश्चित ही चमत्कार घटता है! तुम लिखते हो– मैं कवि हो गया हूं तबसे, कुछ भीतर ऐसा लगता है। तुम कवि नहीं, साधारण कवि नहीं, तुम ऋषि हो गए हो। संस्कृत में दो शब्द हैं कवि के लिए। दुनिया की अन्य भाषाओं में ऐसा नहीं है, एक कवि और दूसरा ऋषि। कवि अर्थात् वह, जो कल्पना से लिखता है, उसे थोड़ी–थोड़ी झलक मिलती है सत्य की, सौन्दर्य की। और ऋषि वह है जो कल्पना में नहीं जीता, जो उस सत्य में जीना शुरू कर देता है। उसका जीवन ही एक कविता हो जाता है। आश्चर्य नहीं है कि दादू, कबीर, मीरा और नानक ने इतने गीत गाए। भारत के पुराने सारे शास्त्र संगीतबद्ध हैं, लयबद्ध हैं, गीतरूप में हैं। कृष्ण के वचनों को हम कहते हैं भागवत गीता। यह संयोग नहीं हो सकता कि सारे ऋषि कविता लिखते रहे और जिन्होंने नहीं भी लिखी कविता– जैसे बुद्ध ने, महावीर ने,

ओशो ने नहीं लिखी, तो याद रखना उनका पूरा जीवन ही एक महाकाव्य था, उनका पूरा जीवन ही एक गीत था, भागवत गीता था। वाणी या कलम से भले गीत न झरे हों, उनके रोम–रोम से गीत ही झर रहे थे। परमात्मा स्वयं सदा से वंशी बजा रहा है, गुनगुना रहा है, ओंकार उस की गुनगुनाहट ही तो है–

हरि गीत गा रहा है, क्या याद है?
वंशी बजा रहा है, क्या याद है?
कहीं हो गया हिमालय, कहीं हो गया वो गंगा;
कहीं काशी कहीं काबा, क्या याद है?
शरमाया बनके राधा, मीरा हो घुंघरू बांधा;
कभी कान्हा बनके बोला, क्या याद है?
कभी दादू, कभी नानक, कभी बन गया कबीरा;
कभी ओशो बन के बोला क्या याद है?
सिद्धार्थ में वही फिर, मधुगीत गा रहा है;
एक रामनाम सच है, क्या याद है?

स्वामी प्रेम अनुग्रह, नाचो, गाओ, गुनगुनाओ; अगर यह पागलपन भी है, तो यह स्वीकार्य है। उस समझदारी से बचना जिसका परिणाम दुख है। यह दुनिया बड़ी विचित्र है, यहाँ दुखी आदमी को देखकर कोई नहीं कहता कि यह पागल है, क्योंकि सब तरफ वैसे ही पागल हैं; दुखियारे, लंबे उदास चेहरे, अपनी जिंदगी का रोना रोते हुए, आवागमन से मुक्ति की चाहत से भरे हुए... कि कैसे छुटकारा हो जिंदगी से, हम उन्हें धार्मिक कहते हैं– गम्भीर रूप से धार्मिक।

मैंने तो एक मजाक सुना है कि 'गधा' शब्द जो है वह शॉर्टफॉर्म है– गम्भीर से 'ग' और धार्मिक से 'धा' लेकर बनाया गया है। गधा यानी गम्भीर धार्मिक! अंग्रेजी में गधे के लिए डंकी या 'ऐस' कहते हैं वह 'ए.एस.एस.'–'ए सीरियस स्प्रिचुअलिस्ट' का संक्षिप्त रूप है।

मगर कोई दुखी आदमी को पागल नहीं कहता, सुखी आदमी को देखकर हमें लगता है कि मामला कुछ गड़बड़ है। तुम जरा सोचो सड़क पर चला जा रहा है एक आदमी मुस्कराता हुआ, हर किसी को शक होगा कि इसका दिमाग खराब हो गया है... मुस्करा रहा है! अरे जिंदगी में इतने दुख, इतनी पीड़ाएं, इतनी तकलीपेंफ हैं..

और इन्हें शर्म नहीं आती, ये सज्जन मुस्करा रहे हैं; ले चलो पकड़कर किसी डॉक्टर के पास। इलेक्ट्रिक शॉक वगैरह लगवाओ। मुस्कराते, गीत गाते, नाचते आदमी को हम पागल समझते हैं। इसलिए तो कबीर बार–बार स्वयं को ही संबोधन करके कहते हैं– 'कहै कबीर दीवाना'। मीरा बार–बार अपने लिए कहती है– 'हे री मैं तो प्रेम दीवानी'। खुद ही कह लेती है, क्योंकि सारे लोग कह रहे हैं, सब सहमत हैं कि मीरा दीवानी हो गई है। किंतु उसकी दीवानगी भी ज्यादा कीमती है तुम्हारी समझदारी से।

मैंने सुना है एक बहुत समझदार दार्शनिक के बारे में जो बहुत ही नकारात्मक दृष्टिकोण वाला था। हर चीज में से कुछ निगेटिव पहलू ढूंढ़ लेता था। हर चीज में से दुख और उदासी का कोई कारण खोज लेता था। बड़ा खोजी प्रवृत्ति का था। और जिसे तुम खोजोगे, याद रखना, वह देर–सवेर मिल जाएगा। कबीर ने कहा है– 'जिन खोजा, तिन पाइयां।' तुम आनंद को खोजोगे तुम्हें आनंद मिल जाएगा, तुम दुख खोजोगे तो दुख मिल जाएगा। जिन्दगी में सब कुछ है, तुम फूल ढूंढ़ने जाओगे, तुम्हें फूल मिल जाएंगे, तुम कांटे गिनने जाओगे तुम्हें कांटे ही कांटे चुभ जाएंगे। लेकिन स्मरण रहे, जिम्मेवारी तुम्हारी है। वह दार्शनिक एक दिन सुबह–सुबह चाय–नाश्ता कर रहा था। उसकी पत्नी कह रही थी कि आप व्यर्थ ही इतने दुखी और निराश होते हैं। जिंदगी में कुछ विधायक पक्ष भी हैं, उन्हें भी देखा करें। उस निराशावादी दार्शनिक ने कहा कि खाक विधायक पक्ष देखूं... आज तक तो मुझे एक भी दिखाई न दिया। उदाहरण के लिए समझो, मैं इस टोस्ट पर मक्खन लगा रहा हूं; यदि संयोग से यह टोस्ट नीचे गिर गया तो पक्का समझो कि मक्खन वाली साईड ही नीचे जाएगी ताकि टोस्ट बर्बाद हो जाए। ये अस्तित्व बिल्कुल दुश्मन है। मक्खन वाली साईड अगर ऊपर रहे तो हम टोस्ट को झड़ाकर भी खा सकते हैं, लेकिन हमेशा मक्खन वाली साईड ही नीचे गिरेगी। सारा कचरा–कूड़ा उसमें चिपक जाएगा ताकि खा न सको। इस आशाविहीन जिंदगी में भला कैसे खुश हो सकता हूं?

उसकी पत्नी ने कहा, चलो एक प्रयोग करके देखो आज! वह मक्खन पर टोस्ट लगा ही रहा था... उसने हाथ में पकड़ा टोस्ट उठाकर हवा में छोड़ दिया। संयोग की बात वह टोस्ट इस तरीके से गिरा कि मक्खन वाली साईड ऊपर रह

गई। उसकी पत्नी खुशी से उछलकर बोली, 'यही मैं कह रही थी... थोड़ा विधायक दृष्टिकोण वाले बनो।' उस दार्शनिक ने कहा कि 'तुम समझी नहीं। मैंने गलत साईड पर मक्खन लगा दिया। मुझसे भूल-चूक हुई है। यह परमात्मा की कोई कृपा नहीं है, मुझसे गलती हो गई। इसमें प्रसन्न होने की क्या बात है? अथवा आज मेरे सिद्धांत को गलत साबित करने के लिए ईश्वर ने चाल चली है। सारा अस्तित्व मेरे खिलाफ है। इसी कारण तो मैं जीना नहीं चाहता।' बड़ी मुश्किल है, तर्क से कुछ भी प्रमाणित किया जा सकता है। निराशावादी आदमी हर चीज में से निराशा खोज ही लेगा। उसने जिंदगी का अंधेरा पहलू देखने की कसम खा ली है।

तुम तो प्रेम से भरो, अनुग्रह से भरो। इस काव्य को उठने दो और भीतर जो गीत झंकृत हो उठा है उसे प्रगट होने दो। उत्सव मनाओ। दुनिया की फिक्र मत करना, इस दुनिया ने मस्तों को सदा पागल कहा है। उसे तुम पुरस्कार समझना, यही पुरस्कार सदा से आनंदित व्यक्तियों को मिला है। डूबो अपने अनुभव में, और-और गहरे डूबो।

तुम कहते हो ओशो के चरणों में यह चमत्कार घटा, निश्चित रूप से इससे बड़ा कोई और चमत्कार नहीं; लोग कहते हैं कि साईं बाबा हाथ से राख निकालते हैं, इसमें चमत्कार है; कोई कहता है जीसस ने बीमार को ठीक कर दिया, इसमें चमत्कार है। क्या खाक चमत्कार! गंभीरता बड़ी से बड़ी बीमारी है, महारोग है। ओशो की कृपा से यह महारोग ठीक हो जाता है यह सबसे बड़ा चमत्कार है। तुम्हारे जैसे दुख-भंडार के अंदर से प्रसन्नता निकाल दी! राख निकालने से क्या होगा? एक बीमारी ठीक हो जाने से क्या होगा? यह तो एक डॉक्टर भी ठीक कर देता, समझदार आदमी को अस्पताल जाना चाहिए; इसमें संत के पास जाने की क्या जरूरत? संत तुम्हारी बीमारी ठीक करने के लिए नहीं बैठा है। उसे कुछ और महत्त्वपूर्ण कार्य करना है।

कई बार लोग मेरे पास आ जाते हैं कि आशीर्वाद दे दीजिए कि बेटे की शादी हो जाए। मैं कहता हूं- पहले सोच तो लो, विवाहित जीवन आशीर्वाद है कि अभिशाप है? तुम जरा अपनी कहानी बताओ कि तुम अपनी पत्नी के साथ सुखी रह रहे हो? वे कहते हैं- नहीं, जीवन बिल्कुल नरक हो गया।

मैं कहता हूं- तुम बेटे के लिए आशीर्वाद मांगने आए हो कि नरक में भेजने का

इंतजाम कराने आए हो? मुझे इस झंझट में न फंसाओ, मैं आशीर्वाद देने वाला नहीं हूं। कल को तुम्हारा बेटा आकर गाली देगा कि 'स्वामीजी, आपके आशीर्वाद से मेरा विवाह हुआ था।' नहीं, मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं, ऐसा आशीष मैं दूंगा ही नहीं। अस्तित्व में बस एक ही आशीष हो सकता है और वह यह है कि तुम परम आनंदित हो जाओ। प्रेम अनुग्रह, वह आशीष तुम्हारे जीवन में घट रहा है। और तुम्हें जो आश्चर्य हो रहा है कि मैं तो मौन में डूबने चला था और गीत कैसे फूटने लगे हैं? कभी–कभी ऐसा होता है। हम ध्यान मार्ग पर चल रहे थे, और अचानक भीतर से प्रेम के छंद प्रगट होने शुरू हो जाते हैं। योग साधते–साधते अनायास भक्ति सध जाती है। शून्य को खोजने चले और पूर्ण से मिलन हो जाता है।

ओशो कहते हैं– यह भी हो सकता है कि महावीर जैसे मौनी सद्गुरु के पास बैठो और गीत फूटें। और यह भी हो सकता है कि मीरा के गीत सुनो और मौन में डूब जाओ। ये सब संभावनाएं हैं। मगर, अगर तुम्हारे जीवन में श्रद्धा है, भक्ति है, प्रार्थना है, तो उसे दबाना भी मत। जो सहज हो, जो तुम्हारा स्व–छंद हो, उसे प्रगट होने देना। (प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, प्रवचन–8)

देवता से जब मौन की भीख मांगी, नाद के मधुकलश मुखरित छंद पाए।
प्रभा–मंडल है दिवा–निशि–नाथ जिनके, जब कभी देखा उन्हें दृग बंद पाए।
नाचते उन्मत्त बनकर शूलधर जब, फूल झरते शील–संयम साधना के।
स्वेद–कण विज्ञान, पद–रज ज्ञान–गरिमा, दास योगी–यति उनकी कामना के।
हैं विरोधाभास समरसता चरण दो, छांह उनकी परम प्रज्ञातीत माया।
मृत्तिका से भी मृदुल कोमल हृदय है, वज्रदृढ़ ब्रह्मांड कांचनकांति काया।
श्वास के दो तार आकर्षण–विकर्षण, नींद में शत सृष्टियों का स्वप्न–सर्जन।
अचल पलकों पर विक्रीडित लोक लीला, प्रखर जागृति में प्रलय का घोर गर्जन।
देवता से जब मौन की भीख मांगी, नाद के मधुकलश मुखरित छंद पाए।
प्रभा–मंडल है दिवा–निशि–नाथ जिनके, जब कभी देखा उन्हें दृग बंद पाए।

मौन की भीख मांगी, नाद के मधु–छंद पाए। कभी–कभी ऐसा होता है, हम भजन–कीर्तन में डूबने गए थे, हम भक्ति भाव से चले थे और अचानक शांति घट जाती है, परम–मौन अवतरित हो जाता है। और कभी हम मौन में डूबने चले थे, और भीतर से गीत फूट आता है। मीरा गई थीं संत रैदास के पास मूर्तिपूजा,

कृष्ण–भक्ति के बारे में पूछने, लेकिन रैदास के पास पहुंचकर चमत्कार हुआ। मीरा भी निर्गुण और निराकार की भक्ति में डूब गई। भूल गई कृष्ण को फिर। इतिहासविदों ने भी इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया है। उसके पहले तक मीरा कृष्ण के गीत गाती थीं, विरह के गीत– अंसुवन जल सींच–सींच प्रेम बेलि बोई। संत रैदास के मिलने के बाद चमत्कार हुआ, राम–नाम का ज्ञान हुआ, ओंकार से परिचय हुआ। फिर उसने गाया है– 'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो, वस्तु अमोलक दी मेरे सद्‌गुरु किरपा कर अपनायो।'

रैदास के सत्संग में डूबकर, शिष्या बनने के उपरांत मीरा गा उठीं– 'मनवा राम–नाम रस पीजै, तज कुसंग, सत्संग बैठ नित हरि चर्चा सुन लीजै।' सारी बात बदल गई, विरह के गीत कृष्ण के संबंध में हैं। और मिलन के सारे गीत भीतर के राम–नाम, अंदर गूंजती ओम् की महाध्वनि के संबंध में हैं। 'पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे!' ओम् की महाध्वनि को सुनकर सहज ही कोई गीत गाने लगेगा, संगीतकार बन जाएगा, नृत्य कर उठेगा।

प्रेम अनुग्रह तुम भी नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ। अब तुम ओशो के सही संन्यासी हुए। ओशो ने कहा है कि मेरे संन्यासी की परिभाषा यही है– 'उत्सव आमार जाति आनंद आमार गोत्र।' सहज रहो। यही सहज योग का सूत्र है– अपने स्वभाव में रमो।

जिंदगी की किताब में खोजो

प्रश्न–2: अच्छे कर्म करने पर अच्छा फल मिलता है, ऐसी कर्मवाद की धारणा है। किन्तु जिन्दगी में इसके प्रमाण नहीं मिलते। आपका क्या कहना है?

सिद्धान्तों में नहीं, सीधे जीवन में देखो। मैं कर्मवाद के सिद्धान्त से सहमत हूं; लेकिन ऊपर–ऊपर जो कर्म दिखाई देते हैं सिर्फ वे ही नहीं, उनके आगे–पीछे भी बहुत कुछ है। कर्म का सिद्धान्त तो बिल्कुल साफ है। मैं आग में हाथ डालूँगा तो मेरा हाथ जलेगा। मुझे तकलीफ होगी। मुझे अपने कर्म का परिणाम भुगतना होगा। ठीक उसी प्रकार मैं क्रोध की आग में उतरूंगा तो भी मुझे जलना होगा। मुझे पीड़ा होगी। लेकिन जिन्दगी में हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति अच्छे कर्म कर रहा है और उसको बुरे परिणाम आ रह हैं, या इसका विपरीत, कोई बुरे कर्म कर रहा है और अच्छे फल उसको मिल रहे हैं।

फिर समझना थोड़ा मुश्किल और जटिल हो जाता है। लेकिन गौर से देखेंगे तो आप पाएंगे कि जरूरी नहीं है कि जो व्यक्ति अच्छे कर्म कर रहा हो उसका इन्टेंशन, उसके इरादे भी अच्छे हों। और ये भी जरूरी नहीं है कि जो आदमी बुरे कर्म कर रहा है उसके इरादे खराब ही हों। तो केवल ऐक्शन का ही परिणाम नहीं आता, इंन्टेंशन का भी परिणाम आता है। यदि मैं दुर्भावना के वशीभूत होकर ऊपर-ऊपर से अच्छे दिखने वाले काम करूँ, तो दो प्रकार के परिणाम आएंगे। एक तो मेरे अच्छे दिखने वाले कर्म के कुछ सद्परिणाम होंगे और दूसरा मेरे भीतर जो छिपा हुआ अशुभ भाव था, उसके दुष्परिणाम भी होंगे। इसके अलावा कर्म के आगे-पीछे और एक श्रृंखला है, उसे भी समझें।

जिंदगी जटिल है। हो सकता है आज मैं अच्छे कर्म कर रहा हूँ लेकिन पीछे मैंने कुछ ऐसे कर्म किए हैं जिनके परिणाम देर से आएंगे। हो सकता है पाँच साल पहले मैंने किसी का अपमान किया था। वह व्यक्ति प्रतीक्षा कर रहा है कि कब अपमान का बदला ले। हो सकता है आज उसे मौका मिला, आज वह बदला ले, मेरी बेइज्जती करे। माना कि आज मैं अच्छे काम कर रहा हूँ लेकिन पीछे जो मैंने कर्म किए उसके परिणाम भी तो भुगतने होंगे। और जानने वाले कहते हैं, कोई एक ही जन्म नहीं, कई-कई जन्म हो चुके हैं हमारे। चलो... छोड़ो पीछे के जन्मों को... इस जन्म के हिसाब किताब तो हमें स्पष्ट नज़र आते हैं।

तो केवल ऐसा ना समझें कि वर्तमान-कर्म के ही परिणाम होते हैं। पिछले कर्मों के भी परिणाम होते हैं और कर्म के अतिरिक्त हमारी भावनाएं, इन्टेंशन और हमारे विचार, इरादे- उनके भी परिणाम होते हैं। केवल ऊपर-ऊपर से ना देखें। कर्म का सिद्धांत बिल्कुल सही है। जैसे कर्म करेंगे वैसे फल आएंगे, लेकिन बातें ज़रा सूक्ष्म हैं और भीतर से समझनी होंगी। विचार सूक्ष्म मानसिक कर्म हैं और भावनाएं भी।

कुछ फल ऐसे हैं जो बड़े जल्दी आ जाते हैं। आप सीज़नल फ्लावर्स के पौधे लगाते हैं। अभी पौधा लगाया, पाँच दस दिन में अंकुर आ गए। तीन हफ्ते में फूल खिल गए। कुछ पौधे ऐसे हैं जिनके बीज को पनपने में ही कई महीने लग जाते हैं। आप पीपल, कटहल, वटवृक्ष या आम का बीज बोएंगे तो दो चार दिन तो कुछ पता ही नहीं चलेगा कि क्या हुआ बीज का! कई महीनों के बाद तो अंकुर आएगा। पौधे

को पनपने में कई साल लगेंगे। बड़ा वृक्ष बनते–बनते पन्द्रह साल हो जाएंगे। फिर एक दिन फल आएंगे। हम अक्सर अपने पीछे बोए गए बीजों को भूल जाते हैं। और तब हम इस प्रकार के भ्रम में पड़ जाते हैं कि क्या अच्छे कर्म करने वालों को भी बुरे परिणाम आते हैं! नहीं, ऐसा कभी नहीं होता। आपने आम का बीज बोया है तो आम का मीठा फल ही आएगा, चाहे दस साल या बीस साल बाद आए। नीम का बीज बोया है तो नीम का कड़वा फल ही आएगा। ऐसा कभी नहीं होता कि मैं आम के बीज बोऊं और नीम का पेड़ उग आए, नियम के विपरीत ऐसा कभी नहीं होता। प्रकृति नियम से, ताओ से, धम्म से चल रही है।

विवाहः सहायक या बाधक?

प्रश्न–3ः मेरी उम्र विवाह योग्य है। कृपया बताएं कि एक आध्यात्मिक साधक के लिए शादी करना साधना में सहायक है या बाधक?

न सहायक है, न बाधक है। समझदार सभी परिस्थितियों का उपयोग कर लेता है, नासमझ हर चीज में से समस्याएं खड़ी कर लेता है। असली सवाल विवाह नहीं, विवेक का है। शादी नहीं, समझ का है।

साधना भीतर की बात है, शादी बाहर की घटना है। दोनों के तल अलग–अलग हैं। जैसे कोई पूछे कि हवाई जहाज में यात्रा करने के पहले नीले रंग की शर्ट पहनकर बैंगन की सब्जी खाना चाहिए अथवा पीले कुरते को धारण करके आलू–मटर खाना ज्यादा उपयोगी होगा? आप क्या जवाब देंगे? सिर्फ हंसेंगे। यह सवाल ही असंगत है। दोनों बातें असंबंधित हैं।

ठीक वैसे ही विवाह एक शारीरिक, सामाजिक संबंध है। यदि गहरा हुआ तो मानसिक या हार्दिक नाता है। आत्मा की तो शादी नहीं होती। जबकि साधना चेतना के तल पर होती है। वह एक आध्यात्मिक नाता है। शादी स्त्री–पुरुष के देहों का मिलन है, समाधि आत्मा–परमात्मा का महामिलन। दोनों भिन्न आयामों की घटनाएं हैं। विवाह भोग का रिश्ता है, साधना योग का रास्ता है।

इसलिए आपका प्रश्न ही गलत है। सहज–स्वाभाविक रहें। अपनी मौज से जिएं। जैसी प्रीतिकर लगे वैसी जीवन शैली अपनाएं। हाँ, उसमें ध्यान का आयाम जोड़ दें, बस इतना स्मरण रखें।

प्रश्न–4ः 'ओशो' शब्द का क्या अर्थ है? कृपया बताने की अनुकंपा करें।

ओशो ने अपने जीवनकाल के अन्तिम क्षणों में यह शब्द अपने लिए, नाम रूप में चुना। यह शब्द अंग्रेजी के एक कवि विलियम जेम्स की कविता 'ओशनिक एक्सपीरियन्स' से लिया गया है। ओशनिक एक्सपीरियन्स यानी सागरीय अनुभव, समुन्दर जैसे विराट होने का अनुभव। जब कोई बूंद सागर में मिल जाती है तो वह स्वयं ही सागर स्वरूप हो जाती है, अलग नहीं बचती। ऐसे ही जब हमारी जीवात्मा परमात्मा के साथ, विराट ब्रह्म के साथ लौ–लीन होकर एक हो जाती है, तब आत्मा नहीं बचती है बस परमात्मा ही बचता है। बूंद समाप्त, केवल सागर शेष। ऐसा ओशनिक एक्सपीरियन्स, सागरीय अनुभव जिसे हुआ उसे 'ओशो' कहते हैं। ओशो ने एक नया शब्द गढ़ा अपने लिए। यह इस बात का प्रतीक है कि 'ओशो' किसी पुरानी परम्परा, किसी रूढ़ि के हिस्से नहीं हैं। वे एक नई परम्परा की शुरुआत हैं। इस नए शब्द के संग एक नई परम्परा शुरू होती है। कबीर साहब के शब्दों में इस बात को समझें तो आसानी होगी। आपने सुना होगा कबीर साहब का यह प्रीतिकर वचन–

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हेराय।
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाय।।

वे कहते हैं, खोजते–खोजते कबीर स्वयं खो गया। जैसे बूंद सागर में गिरी, अब कहाँ बूंद मिलेगी? कौन बूंद, कहाँ की बूंद! सागर ही बचा, बूंद खो गई। बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाय। अब कहाँ बूंद को खोजें? उसकी कोई आइडेन्टिटी नहीं बची। तो 'ओशो' शब्द का अर्थ है, ऐसा व्यक्ति जो विराट ब्रह्म के साथ एकाकार हो गया। उपनिषद् में एक अति–महत्त्वपूर्ण वाक्य है कि ब्रह्म को जानने वाला स्वयं ब्रह्म हो जाता है।

हरि ओम् तत्सत्!

धन्यवाद!

प्रवचन–5

संवेदनशील बनो और सुनो!

प्रश्नसार–

1. जीवन रूपांतरण का सूत्र– ओंकार
2. परमात्मा की अनुभूति कैसी होती है?
3. मरणोपरान्त क्या होता है?
4. विचारों का नियंत्रण कैसे करें?
5. संवेदनशीलता वृद्धि से निर्वाण–उपलब्धि

प्रश्न–1: आपके जीवन में ऐसा कौन सा रूपांतरण घटा कि आप सद्गुरु ओशो के सत्य स्वरूप से परिचित हुए?

'घटा' तो नहीं कहूंगा, वह अतीत काल की बात हो जाती है; यह कहना ज्यादा सटीक होगा कि सन् 1998 के आरंभ में भीतर की परम ध्वनि ओंकार अर्थात् एक हाथ की ताली को सुनकर मेरे जीवन में रूपांतरण घटने का सिलसिला आरंभ हुआ। वह आज भी जारी है... एक अंतहीन प्रक्रिया! 'घटी' नहीं, 'घट रही है।'

परम श्रद्धेय ओशो सिद्धार्थ जी ने मुझे परम ध्वनि की प्रत्यभिज्ञा कराई, समाधि–साधना शुरू करवाई। अपने भीतर एक ओंकार सतनाम को पहचानाने के पश्चात् मेरा जीवन बदलने लगा। एक नई दिशा में मेरी ऊर्जा बहने लगी... यूं कहो तो नई, किंतु सच कहो तो शाश्वत... न नवीनतम, न प्राचीनतम, वरन् सनातन।

करीब 35 सालों से मैं ध्यान–साधना करता था, लेकिन असली बात नहीं बन पा रही थी, मैं लक्ष्य से चूक–चूक जा रहा था। आंतरिक–संगीत के परिचय से अचानक कुछ बात समझ में आई, जैसे एक दृष्टि खुली और फिर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि रोज–रोज ओशो जो समझा रहे थे, इतने वर्षों में वह मैं समझ क्यों नहीं पाया? बड़े अचरज की बात है... मैंने ओशो के हजारों प्रवचन सामने बैठ कर सुने हैं, उनकी लगभग सारी किताबें पढ़ी हैं। 'ओशो दर्शन' पत्रिका के संपादन एवं अनेक किताबों के अनुवाद कार्य में संलग्न रहा अर्थात् पुस्तकों से मेरा बहुत निकट का नाता रहा है। ओशो साहित्य को जितनी गहराई से मैंने जाना, उतना मौका तो कम ही लोगों को मिल पाता है। ओशो का भाई होने के नाते बचपन से ही उनकी आध्यात्मिक छत्र–छाया में जिया। लेकिन 19 जनवरी 1998 को, ओशो के निर्वाण–दिवस पर, ओशो की कृपास्वरूप जब मेरे भीतर अनायास कुछ अनुभूति आरंभ हुई, और तीन माह बाद अप्रैल में सिद्धार्थ जी ने उसका रहस्य उजागर किया, तब मुझे पता चला कि मैं धर्म की मूल देशना ओंकार को समझ ही नहीं पा रहा था। ओशो जो गहरे राज की बात बताना चाह रहे थे, 'मौन संगीत' के विषय में जो संकेत कर रहे थे, वे मेरे सिर के ऊपर से निकल रहे थे।

अचानक अंतर्ध्वनि–श्रवण के अद्भुत अनुभव के साथ ही ओशो की सारी बातें समझ में आने लगीं और अपने ऊपर बहुत हंसी भी! अब ओशो की किताब पढ़ता हूं, उनके प्रवचन सुनता हूं तो हृदय नाच–नाच उठता है कि अरे! ओशो यही तो समझा रहे थे, प्रतिदिन समझाने का कितना प्रयास कर रहे थे, भांति–भांति से इशारे कर रहे थे और मैं नहीं समझ पा रहा था। दुःख भी होता है और हंसी भी

आती है अपनी मूढ़ता पर।

...फिर मेरे जीवन में अचानक मोड़–सा आया, समाधि लगनी शुरू हो गई और क्रमशः समाधि लगते–लगते 5 जनवरी 2001 को बुद्धत्व या परम–ज्ञान की घटना घटी जिसे संबोधि या एनलाइटेनमेंट भी कहते हैं। और तब से मेरा सारा जीवन ही बदल गया। अब मैं वही नहीं हूं जो पहले था। पुराना विदा हो गया, कुछ नया ही घटित हुआ। बहुत आनन्द, बहुत प्रेम, बहुत शांति भीतर छा गई। सब समस्याएं जैसे तिरोहित हो गईं, जिन्दगी के महत्त्वपूर्ण सवालों का समाधान मिल गया। और तब एक नई पीड़ा शुरू हुई... याद रखना, गहन आनन्द के साथ गहन पीड़ा भी स्वभावतः आती है, जीवन द्वंद्व से बना है, करुणा पीड़ा का ही रूप है... पीड़ा शुरू हुई कि दुनिया में इतने लोग दुखी हैं। परमानंद का खजाना सबके भीतर है और उन्हें पता नहीं, चाबी भी उनके पास है परंतु वे कुंजी को पहचानते नहीं। कैसे यह बात दौड़–दौड़ कर, घर–घर जाकर सबको बतला दूं!

...तबसे बस उसी श्रम में लगा हुआ हूं। अपने लिये तो दुःख समाप्त हो गया, अब दूसरों के लिये एक करुणा का भाव है। तबसे इसी काम में लगा हुआ हूं। आपके पास आया हूं बस यही छोटा–सा संदेश लेकर। बात बिल्कुल छोटी–सी है, किंतु जीवन की सबसे बड़ी बात भी वही है कि आनंद और शांति का खजाना जिसका नाम परमात्मा है, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। चाबी भी तुम्हारे भीतर मौजूद है, जन्म से ही तुम सब–कुछ लेकर आये हो। बस तुम्हें इतना ही नहीं पता कि चाबी को ताले में कैसे लगाना और कैसे खोलना है? बस इतनी–सी बात है और वह सीखी जा सकती है, वह कोई कठिन मामला नहीं है। सिर्फ यही बताने आया हूं और फिर आप देखेंगे कि आपका जीवन भी रूपांतरित होने लगा, आप एक नये ही व्यक्ति होने लगे... जैसे किसी पंछी को अपने भूले–बिसरे पंखों की याद आ जाए!

परमात्मा के दर्शन

प्रश्न–2: क्या आपने परम पिता परमात्मा के दर्शन कर लिये हैं? कृपया बताएं कि उसकी अनुभूति कैसी होती है?

दर्शन तो नहीं, मगर हाँ... दूसरे अर्थों में समझना... वह ज्ञान दर्शन जैसा नहीं है, साक्षात्कार जैसा नहीं है कि अचानक परमात्मा से मिले, हाय–हैलो किया, हाथ मिलाया, पूछा कि कहिये प्रभुजी कैसे हैं? बड़ी कृपा कि आपने दर्शन दिए। चाय–कॉफी लेंगे या कोका–कोला?... और उनका इंटरव्यू ले लिया।

परमात्मा के दर्शन ऐसे नहीं होते। परमात्मा दृश्य नहीं, द्रष्टा है। ऑब्जेक्ट नहीं, सब्जेक्ट है। स्वयं के प्राणों के केन्द्र में जो ओंकार–रूपी परम संगीत गूंज रहा है, और अंतर–आकाश में जो दिव्य आलोक छाया है; उसकी प्रतीति हीं आत्म–दर्शन है, वहीं ब्रह्म–साक्षात् है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, वह एक ऊर्जा है, एक शक्ति है हमारे भीतर। अपने हीं भीतर डूबकर, उस द्रष्टा को जानना, उसको पहचानना हीं प्रभु–मिलन कहलाता है।

हाँ, वह दर्शन मुझे हुआ इसलिये मैं इतना उत्सुक हूं, जगह–जगह जाकर सबको बताता फिर रहा हूं कि प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह संभव है। इसके लिये किसी भांति की पात्रता, योग्यता नहीं चाहिये, कोई पुण्य–कर्मों का हिसाब–किताब नहीं चाहिये। आप जैसे हैं वैसे हीं परमात्मा को जान सकते हैं। कोई शर्तबंदी नहीं है कि यह करो... कि वह करो... कि वैसा मत करो। हम जैसे हैं हम वैसे परमात्मा हीं हैं लेकिन हम इसे जानते नहीं हैं। थोड़ा सा हम ध्यान में डूबेंगे तो हम अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेंगे।

एक छोटी सी कहानी कहूं, है तो कहानी हीं, लेकिन कई बार झूठी कहानी में भी बड़ी सच्ची बात छिपी होती है। कहानी है कि ईश्वर ने जब दुनिया बनाई, तो शुरुआत के दिनों में बड़े मजे में था। पेड़–पौधे बनाये, पशु–पक्षी बनाये, जलचर और नभचर बनाये, भांति–भांति के जीव–जन्तु बनाये। फिर एक दिन ईश्वर ने आदमी को बनाया और उस दिन से बड़ी मुसीबत खड़ी हो गई... जब देखो लोग खड़े हैं शिकायत करने को। कोई कह रहा है ऐसा कर दीजिए, कोई कह रहा है वैसा कर दीजिए, और वे सब आपस में विपरीत बातों की प्रार्थना कर रहे हैं... कोई कह रहा है धूप निकलवाइये कपड़े सुखाने हैं, कोई कह रहा है कि आज धूप मत निकलवाना हमको गर्मी बहुत लगती है। कोई कुछ मांग रहा, कोई कुछ सुझाव दे रहा! ईश्वर बहुत परेशान हो गया। मनुष्य को बनाकर उसकी रात की नींद हराम हो गई। और फिर धीरे–धीरे मनुष्यों में राजनैतिक पैदा हो गए, नेता आने लगे झंडे ले लेकर, कहीं घेराबंदी तो कहीं नारेबाजी करने लगे। तब ईश्वर ने सोचा कि अब कुछ करना पड़ेगा। उसने देवताओं की विचार गोष्ठी बुलाई और कहा कि मुझे रास्ता बताओ, मैं थक गया हूं इस आदमी को बनाकर। मैं कहीं छिप जाना चाहता हूं।

एक देवता ने कहा कि प्रभु, आप प्रशांत महासागर की गहराई में जाकर निवास करें। वह है आठ किलोमीटर गहरा वहाँ आदमी कभी न पहुंच सकेगा। परमात्मा ने अपनी दोनों आंखें बंद कीं, भीतर तीसरा नेत्र खोला और दूर दृष्टि से

देखकर बोला– तुम जानते नहीं 19 वीं सदी आते–आते ये लोग पनडुब्बियां बना लेंगे और दूरबीनें लेकर नीचे पहुंच जाएंगे, वे दुष्ट मुझे खोज लेंगे फिर मुसीबत खड़ी हो जाएगीं। कुछ और सोचो। दूसरे देवता ने कहा कि आप ऐसा करिये – हिमालय के एवरेस्ट शिखर पर पहुंच जाइये वहाँ आदमी कैसे पहुंचेगा? परमात्मा ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर कहा कि तुम जानते नहीं 20 वीं सदी के मध्य में तेनज़िंग और हिलेरी नाम के दो आदमी पहुंच जाएंगे गौरीशंकर पर और फिर वही सारा उपद्रव हो जाएगा। तीसरे देवता ने सलाह दीं– प्रभु, आप चंद्रमा पर जाकर विराजमान हो जाएं। परमात्मा ने फिर नैन मूंदकर दिव्य दृष्टि खोली और उदासी से कहा कि मैं देख रहा हूं कि अपोलो यान से उतरकर नील आर्मस्ट्रांग नामक एक व्यक्ति चंद्रमा पर झंडा फहरा रहा है... तो समस्या स्थगित जरूर हो जाएगी कुछ सदियों के लिये, लेकिन वे लोग वहाँ भी पहुंच जाएंगे, फिर मुझे तंग करने लगेंगे। कुछ और उपाय बताओ।

एक बूढ़े देवता ने, जो बहुत समझदार था, ईश्वर के कान में आकर कुछ फुसफुसाया। ईश्वर बहुत प्रसन्न होकर बोला– बिल्कुल ठीक, मैं उसी जगह पर निवास करूं। तब से ईश्वर उसी जगह पर निवास कर रहा है।

जानते हैं उस बूढ़े देवता ने क्या कहा था? उसने कहा था कि प्रभु आप मनुष्य के हृदय में ही विराजमान हो जाइये। वह सब जगह भटकेगा दुनिया में– सागर–पर्वतों में, चांद–तारों में, मंगल–शुक्र ग्रह पर भी पहुंच जाएगा लेकिन अपने भीतर जाने की उसे न सूझेगी। और, जो लोग अपने भीतर जाएंगे वे लोग शिकायती नहीं होंगे। वे तो प्रसन्न और आनन्दित लोग होंगे, उनसे कोई खतरा नहीं। वे लोग जाकर आपको परेशान नहीं करेंगे। क्योंकि केवल धन्यवाद में जीने वाले लोगों को, उत्सवपूर्ण लोगों को ही स्वयं के अंतस में प्रवेश मिलता है। शिकायती चित्त बहिर्मुखी होता है, अहोभाव में डूबी चेतना ही अंतर्मुखी हो सकती है।

परमात्मा यानी परम–आत्मा, आत्मा का परम रूप, हमारी चेतना में छिपी हुई वह अलौकिक शक्ति। उसका दर्शन ही ईश्वर–साक्षात्कार कहलाता है, और वह प्रत्येक व्यक्ति के लिये संभव है। कोई कठिन साधना की जरूरत नहीं है, घर–द्वार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। हम जैसा जीवन जी रहे हैं, ऐसा ही जीते हुए उसे जाना जा सकता है। यही छोटा सा संदेश देने के लिये मैं आपके पास आया हूं।

मरने के पहले या बाद?

प्रश्न–3: कृपया बताएं कि मरणोपरान्त क्या होता है? अगले जन्म को अच्छा बनाने के लिए एक साधक को इस जन्म में क्या साधना करनी चाहिए?

अच्छा हो कि मरने के पहले क्या हो रहा है पहले यह जान लें। किंतु हमारी उत्सुकता सदा दूर में होती है... मरणोपरान्त क्या होगा? अभी से जानकर क्या करोगे, कुछ लाभ नहीं। जीवन क्या है यह हमें नहीं पता, जीवन का मूल–स्रोत क्या है, यह भी हमें नहीं पता। मैं कौन हूं, क्या हूं, कहाँ से मेरे भीतर यह चेतना की धार आती है, कुछ मालूम नहीं। मेरा स्वयं का होना क्या है, यह ज्ञात नहीं, और हम बड़े दूर की सोचते हैं। अपने घर का होश नहीं, और चांद–तारों की खोजबीन में रस लेते हैं।

नहीं, मैं आपको नहीं कहूंगा कि मरणोपरान्त क्या होता है? मैं तो यह कहना चाहूंगा कि मरण से पूर्व इस जीवन में क्या हो रहा है, थोड़ा जागकर उसको देखें। यह क्रोध कहाँ से पैदा होता है, ये लोभ और मोह कैसे पकड़ लेते हैं, ईर्ष्या–द्वेष की अग्नि में कैसे हम घिर जाते हैं और अपनी जिन्दगी बरबाद कर लेते हैं, ये भविष्य की चिन्ताएं एवं योजनाएं कैसे हमें खाए जाती हैं, ये मुद्दे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। मुझे किसी दार्शनिक या सैद्धांतिक प्रश्न का उत्तर देने में उत्सुकता नहीं है। क्षमा करें, मुझे नहीं पता कि मरने के बाद क्या होता है, मगर मुझे इतना पता है कि अपने जीवन को सुन्दर कैसे बनाएं। अभी जो जीवन है कैसे इसमें से क्रोधरूपी कांटे व दुश्मनी का जहर निकाल दें? कैसे ईर्ष्या की जलन समाप्त हो जाए? कैसे लोभ और मोह के बन्धन से हमारा छुटकारा हो? कैसे हम एक स्वतन्त्र, फूल जैसा आनन्दपूर्ण, प्रेम की सुगंध से परिपूर्ण, करुणामय जीवन जी सकें? यह जरूर महत्त्वपूर्ण है और इसी में मेरा रस है।

दार्शनिक प्रश्न अंतहीन हैं और उनका निर्णय कैसे करोगे? दस लोगों से तुम पूछोगे कि मरने के बाद क्या होता है, दस प्रकार के उत्तर मिलेंगे। तुम बड़ी दुविधा में पड़ जाओगे कि कौन सही है, कौन गलत? और तय करने का कोई उपाय नहीं... जब तक मर न जाओ तब तक कुछ पक्का होने वाला नहीं... हम ऐसे व्यर्थ के प्रश्न में उलझें ही क्यों? हम सार्थक प्रश्नों को समझें, अपने जीवन को सुन्दर बनाएं, संवारें। हमारे आपस के संबंध मधुर कैसे हों? हम अपने घर–परिवार में ज्यादा प्रेमपूर्वक कैसे रहें? हम एक अच्छे पति कैसे बने, एक अच्छी पत्नी कैसे बनें, एक

अच्छे माता–पिता कैसे बनें? हम एक अच्छे भाई, अच्छी बहन कैसे साबित हों? हम एक अच्छे पड़ोसी तथा एक अच्छे नागरिक कैसे बनें? इसमें मेरी उत्सुकता है। ईश्वर है कि नहीं, छोड़ दो दार्शनिकों को लड़ने के लिये। पिछले दस हजार साल में वे कुछ तय कर नहीं पाए। मरणोपरान्त क्या होता है, जब मरेंगे तब देख लेंगे, इतनी जल्दी भी क्या है?

अभी जो हो रहा है इसको कैसे सुन्दर बनाएं। इसी को मैं धर्म कहता हूं। ओशो की परिभाषाः धर्म यानी जीने की कला। श्री श्री रविशंकर जी जो शब्द उपयोग करते हैं, मुझे बड़ा अच्छा लगता है– 'दि आर्ट ऑफ लिविंग'– यह हमारा उद्देश्य होना चाहिये। दार्शनिक प्रश्न फिज़ूल हैं। उनके उत्तर व्यर्थ की बकवास हैं। उनमें समय खराब न करो। जीवन कैसे और प्यारा व सुन्दर हो उसकी कला हम सीखें, वही है असली धर्म।

आप पूछ रहे हैं कि अगले जन्म को अच्छा बनाने के लिए एक साधक को इस जन्म में क्या साधना करनी चाहिए? मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगले जन्म को अच्छा बनाने की चिंता छोड़कर एक साधक को इस जन्म को ही सुंदर बनाने की साधना में संलग्न हो जाना चाहिए।

विचारों का नियंत्रण

प्रश्न–4: दो–तीन मित्रों ने एक ही सवाल थोड़े अलग–अलग शब्दों में पूछा है कि 'विचारों का नियंत्रण कैसे करें'?

निश्चित ही प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, बहुत–से साधकों की यही समस्या रहती है। अतः इसे थोड़ा गहराई से समझ लें। विचारों का नियंत्रण विचारों के साथ लड़ने से नहीं हो सकता। जिस चीज से लड़कर हम उसे रोकना चाहते हैं वह उतनी ही और ज्यादा बढ़ जाती है। भूलकर भी विचारों से दुश्मनी मत साधना बल्कि अपनी जीवन ऊर्जा को एक नई दिशा में बहाना। निषेधात्मक विधि नहीं, वरन् विधायक एप्रोच काम आएगी। बचने की भाषा में मत सोचना; क्या करना है, वह ख्याल में रखना।

मन के विज्ञान को समझकर चलना। विचारों को चलाने के लिये शक्ति चाहिये, ऊर्जा चाहिये। जैसे आप एक गेंद लुढ़काते हैं, तो गेंद कितनी दूर जाती है– जितनी आपने उसको शक्ति दी। वह एक जगह जाकर रुक जाती है। यदि

आपको गेंद को और लुढ़काना है फिर उसको ठोकर मारनी पड़ेगी। ठीक ऐसे ही हमारे भीतर जो विचार चल रहे हैं, उनको चलाने के लिये भी शक्ति चाहिये। जब आप विचारों से लड़ते हैं तब भी आप अनजाने में विचारों को ही शक्ति देते हैं। उससे विचार और चलेंगे, मामला सुलझेगा नहीं। मैं आपसे कह रहा हूं, दिशा को बदलकर शक्ति को दूसरी तरफ लगा दें। उदाहरण के लिये संजीवनी मंत्र साधना की विधि में श्वासों की ध्वनि को सुनते हैं। इसमें हम सीधा (डायरेक्ट) तो विचारों से न लड़े, हमने तो परोक्ष रूप से (इनडायरेक्ट) कुछ और ही किया। आती–जाती श्वास को हम देखने लगे, उसकी आवाज को सुनने लगे। वह ऊर्जा जो विचारों को चलाने में संलग्न थी वह श्वास की ध्वनि– 'सोहम्' को सुनने में लग गई। परिणामस्वरूप विचार अपने–आप क्षीण पड़ गए। विचार स्वतः कैसे चलेंगे? आपकी शक्ति तो दूसरी तरफ लग गई। आप तो सुनने में संलग्न हो गए, विचार अपने आप बन्द हो जाएंगे।

ऐसा समझें, आप मुझे सुन रहे हैं... यदि आप सचमुच में पूरी ऊर्जा से मुझे सुन रहे हैं तो आपके भीतर विचार चलने अपने आप बन्द हो जाएंगे, यद्यपि आपने विचारों को रोकने के लिये कुछ भी न किया। तो आपसे निवेदन करूंगा विचारों से बिल्कुल न लड़ें। आज तक विचारों से लड़कर कोई नहीं जीता। मन से दुश्मनी मत साधें। हाँ, मन के पार जाने की अन्य विधियां हैं, जैसे श्वासों को देखें, उसकी ध्वनि को सुनें या भक्तिभाव में डूबें। वे लोग जो हृदयपूर्ण हैं, जिनके अंदर संवेदनशीलता व प्रेम की भावना बड़ी प्रबल है, वे उस प्रेम को बढ़ाएं, शक्ति को उस दिशा में मोड़ दें। तब वे पाएंगे विचारों में जो ऊर्जा जा रही थी वह दूसरी तरफ मुड़ गई। एक उदाहरण से कहूं– नदी बह रही है, हम उस पर बांध बनाते हैं, उसके पानी को रोक देते हैं। फिर हम नहर बनाते हैं, नहर से पानी को हम खेत में ले जाते हैं सींचने के लिये। नदी की जो पुरानी धारा थी उसमें पानी का प्रवाह अपने आप कम हो जाएगा क्योंकि हमने नहर खोद दी, या हमने बिजली पैदा की और उस पानी को एक दूसरी दिशा में मोड़ दिया। नदी की पुरानी धारा धीरे–धीरे सूख जाएगी, पानी दूसरी तरफ बहने लगेगा।

ठीक इसी तरह मन में जो विचारों की धारा बह रही है उसको रोकने के लिये आप नई धारा बनाएं। उससे लड़ने की जरूरत नहीं है। आप तो एक दूसरी नहर खोद लें। भक्ति की नहर हम खोद सकते हैं – प्रेम की दिशा में अपनी ऊर्जा को बहाएं, परमात्मा के प्रेम में डूबें। जो लोग भावपूर्ण नहीं हैं वे दूसरा प्रयोग करें –

श्वास को देखें, आती–जाती श्वास की ध्वनि को सुनें। सुनने में शक्ति को लगा दें, विचार अपने–आप बंद हो जाएंगे। कर्मठ लोगों के लिए संपूर्णता के साथ शारीरिक कर्म में तल्लीन होना ही निर्विचार का द्वार बन जाएगा। भोगी प्रवृत्ति वालों के लिए इंद्रियों की संवेदना के प्रति समग्र जागरूकता मन के पार ले जाने वाली सिद्ध होगी। यह तंत्र–साधना कहलाती है।

हाँ, कुछ लोग ऐसे अवश्य होंगे जो सीधे ही विचारों के द्रष्टा बनकर विचार–शून्य होने में सक्षम होंगे। विभिन्न प्रकार के साधकों के लिए भिन्न–भिन्न रास्ते काम आएंगे। मुख्य रूप से ये पांच रास्ते हैं– शरीर–प्रधान व्यक्तियों के लिए कर्मयोग, इंद्रिय–प्रधान व्यक्तियों के लिए तंत्रयोग, प्राण–केंद्रित लोगों के लिए श्वास–योग या कहें अनापानसतीयोग, भाव–केंद्रित व्यक्तियों के लिए भक्तियोग तथा विचार–प्रधान लोगों के लिए ज्ञानयोग। अपनी सहज रुचि के अनुसार अपनी राह खोज लेना। एक बात तो तय है कि विचारों के साक्षी बनने में सफलता नहीं मिली, यानी ज्ञानयोग आपका मार्ग नहीं है। किन्हीं अन्य मार्गों की साधना करके देखें। कर–कर के ही पता चलता है। भटक–भटक के ही मंजिल मिलती है। संत कबीर साहब कहते हैं– 'जिन खोजा तिन पाइयां।'

संवेदनशीलता साधो

प्रश्न–5: मन, आत्मा, बुद्धि एवम् इन्द्रियों को किस प्रकार निर्वाण–उपलब्धि में प्रयोग किया जा सकता है?

वही जो मैं अभी कह रहा था... हम सकारात्मक रूप से कुछ करें। नकारात्मक ढंग से न सोचें। हम कभी न सोचें मन के खिलाफ, इन्द्रियों के खिलाफ, बुद्धि और शरीर के खिलाफ, बल्कि हम अपने तन का, मन का, बुद्धि और इन्द्रियों का विधायक ढंग से उपयोग शुरू करें।

इन्द्रियों को खूब संवेदनशील बनाएं। जब भोजन कर रहे हैं, तो पूरा स्वाद लेते हुए भोजन करें। एक फूल को सूंघ रहे हैं उस समय केवल फूल रह जाए, फूल की सुगंध रह जाए, आप पाएंगे मन में विचार थम गये। फूल की सुगंध लेते–लेते भीतर आप चित्त के पार उठ गये। छोटी–छोटी चीजों में संवेदनशील बनें। आप अपने स्नानगृह में फव्वारे के नीचे खड़े स्नान कर रहे हैं, पानी की महीन बूंदें त्वचा को स्पर्श कर रही हैं, उनकी ठंडक को जरा महसूस करें। कभी बरसते मेघों के तले आंख बंद करके जल की शीतलता को महसूस करें और आप पाएंगे विचार बंद हो

गये, ध्यान लग गया। कोई मन्दिर में बैठ के ही ध्यान लगाने की जरूरत नहीं है, कहीं भी ध्यान लग सकता है। यह पूरी प्रकृति ही प्रभु का मंदिर है। सुबह घूम रहे हैं बगीचे में, पक्षियों की आवाज जरा गौर से सुनें, जरा प्रेमभरी नजरों से इन हरे–भरे पेड़ों को देखें और आप पाएंगे ध्यान लग गया। जिस व्यक्ति को जंगल की जीवंत हरियाली में और बादलों से झरती फुहार में रोमांच नहीं होता, उसे मंदिर में स्थापित पत्थर की मूर्ति में कैसे भगवान नजर आएगा?

संवेदनशीलता को जगाएं। सूक्ष्म होश को साधें, और इस तरह अपनी बुद्धि को, अपने तन–मन को, अपनी इन्द्रियों को खूब संवेदनशील बनाकर साधना में उनका सहयोग प्राप्त करें, वे सभी आपको ध्यान में ले जाने में सहायक साबित होंगे। यदि आपने भ्रांत धारणा बना ली कि वे शत्रु हैं तो वे बाधक प्रतीत होंगे।

अतीत के धर्मों ने शरीर और मन के साथ खूब दुश्मनी साधी। उससे कोई भी लाभ न हुआ। लोग त्याग और तपस्या में जुट गए– कोई भूखा मर रहा है, कोई गर्मी की तेज धूप में आग जलाकर धूनी रमाए बैठा है, कोई ठंडी रातों में नग्न खड़ा है, कोई कांटों की सेज पर लेटा है– इन सब फिज़ूल की बातों से धर्म का कोई लेना–देना नहीं है। हम जिन्हें तपस्वी कहते हैं वे मानसिक रूप से रुग्ण लोग हैं जिन्हें अपने–आप को सताने में मजा आता है। वे हिंसक लोग हैं जो स्वयं के साथ हिंसा करने में विकृत रस लेते हैं, इनका अध्यात्म से कोई भी नाता नहीं है।

धर्म तो 'जीवन की कला' है। खूब–खूब संवेदनशील होकर जियो। अपनी इन्द्रियों को खूब संवेदनशील, सेंसिटिव बनाओ। जी भरके स्वाद लो, सूंघो गहन होश से भरके, सुनो कानों में पूरे प्राण उंडेलके, देखो खूब प्रेम से, जब छुओ कुछ तो तुम्हारी सारी ऊर्जा हथेलियों में आ जाए। खूब जीवंत और संवेदनशील बनो। यही प्रभु–मिलन का उपाय है।

हरि ओम् तत्सत्! धन्यवाद।

प्रवचन–6

ध्यान, प्रेम, कर्म और धर्म

प्रश्नसार–

1. ध्यान या प्रेम– किसे साधें?
2. सबसे बड़ा कर्म और धर्म क्या है?
3. क्रोध से छुटकारा कैसे हो?
4. मा ओशो प्रियाजी के संग ब्रह्मनाद ध्यान

ध्यान या प्रेम– किसे साधें?

प्रश्न–1ः न तो मेरा ध्यान में मन लगता है, न निर्विचार घटता है, न एकाग्रता सधती है। पिछले पंद्रह सालों के मेरे सभी प्रयास असफल हो गए हैं। अध्यात्म में गहन रुचि की वजह से मेरा कोई गहरा दोस्त भी नहीं बन पाया, मैं क्या करूं? मेरी साधना में क्या भूल–चूक हो गई?

मैं आपसे कहना चाहूंगा सबसे पहले आप मित्रता को साधें। आप बहुत ही असंवेदनशील किस्म के व्यक्ति होंगे। कहते हैं कोई मेरा दोस्त नहीं बन पाया। निश्चित रूप से आपने अपने ह्रदय को बिल्कुल सिकोड़ लिया होगा। आप पुराने ढंग के त्यागी–तपस्वी नजर आते हैं, संसार को शत्रु मान लिया, किसी से मित्रता तक नहीं की। नहीं, ऐसा व्यक्ति ध्यान में कभी न डूब सकेगा। मैं तो आपसे कहूंगा जितने हो सकें उतने मित्र बनाएं। रोज कम से कम दो–चार नये मित्र बनाएं, मैत्री साधने का कोई मौका न छोड़ें। आप बस में बैठे हैं, बगल की सीट पर कोई सज्जन बैठे हैं। एक घंटे का समय आपको बस में गुजारना है, क्या इनसे मित्रता नहीं की जा सकती, समय का सदुपयोग नहीं हो सकता? इस अवसर को व्यर्थ क्यों जाने देना?

अपने ह्रदय को थोड़ा फैलाओ, थोड़ा विस्तीर्ण बनाओ। क्यों सिकुड़े–सिमटे बैठे हो छुई–मुई जैसे? अजनबियों के साथ खुलो। यहाँ कोई अजनबी नहीं है। हम सब एक ही प्रकृति की संतान, हम सब भाई–बहन ही हैं। क्यों इतनी दूरी रखना? थोड़ा मिलो, थोड़ा खुलो, भय छोड़ो, जरा प्रेमपूर्ण बनो। पहले मित्रता को साधो, तब नम्बर दो पर आता है ध्यान। फिर तुम ध्यान कर पाओगे। जिस व्यक्ति के लोगों के साथ प्रेमपूर्ण और मधुर संबंध नहीं हैं उसे ध्यान घटित नहीं हो सकता। जिस व्यक्ति के जगत के साथ प्रेमल और माधुर्य–सिक्त संबंध नहीं हैं, जो शत्रुओं की भांति दुनिया में रह रहा है, वह आदमी ध्यान में नहीं डूब सकता। यह असंभव है, ध्यान से शुरुआत नहीं होगी।

मुझे याद आती है ओशो के द्वारा सुनाई गई एक सूफी फकीर की कहानी– बायजीद उसका नाम था। एक दिन सुबह–सुबह कोई युवक बायजीद के पास आकर बोला– मैं ईश्वर को पाना चाहता हूं, ध्यान में डूबना चाहता हूं, मुझे कोई मार्ग बताएं। बायजीद ने उस युवक को उपर से नीचे तक देखा। बिल्कुल रूखा–सूखा, ह्रदयहीन नजर आया। बायजीद ने पूछा कि तुमने अपनी जिन्दगी में कभी किसी को

प्रेम किया है? वह युवक बोला– क्षमा करें, इन सांसारिक बातों में मुझे कोई रस नहीं है। मैं तो आध्यात्मिक व्यक्ति हूं, परमात्मा की खोज में हूं। बायजीद ने पूछा– फिर भी, भूल–चूक से ही किसी को तुमने प्रेम किया है– माता–पिता को, भाई–बहन को, पड़ोसी को, बच्चों को, किसी अजनबी को, किसी जानवर या वृक्ष को ही सही?

उस युवक ने अकड़कर जवाब दिया– मैं आपसे साफ कह चुका हूं कि संसार–वंसार में मेरी कोई उत्सुकता नहीं है, मैं तो बिल्कुल शुद्ध धार्मिक आदमी हूं, परम सत्य की खोज में हूं।

बायजीद की आंखों मे आंसू भर आए, उसने कहा– मुझे माफ करो, मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर पाऊंगा। हाँ, यदि तुम्हारे हृदय में थोड़ा–सा प्रेम होता तो मैं उस प्रेम को एक नई दिशा दे सकता था। उसे ईश्वर की तरफ मोड़ सकता था, लेकिन तुम बिल्कुल ही पाषाण–हृदय मालूम होते हो, तुम्हारे लिये कोई मार्ग नहीं है। जाओ संसार में पहले प्रेम का सबक सीखो। संसार एक पाठशाला है प्रेम का सबक सीखने के लिए। थोड़ा अपने हृदय को खोलो, यह जो चट्टान अपने भीतर रखकर बैठे हो इसको पिघल जाने दो, बह जाने दो, थोड़े भाव में डूबो, फिर आना मेरे पास। अभी मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर पाऊंगा।

ठीक वैसा ही आपका सवाल है कि ध्यान में बिल्कुल मन नहीं लगता और मेरा कोई भी दोस्त नहीं बन पाया। मैं तुम्हें ध्यान न सिखा सकूंगा। पहले जाकर दोस्ती सीखो, फैलाओ अपने आप को। फैलते–फैलते एक दिन तुम परमात्मा को भी जान सकोगे। परमात्मा अर्थात् यह विराट अस्तित्व। तुम इस विराट सृष्टि के एक छोटे से हिस्से 'एक मनुष्य' से भी प्रेम न कर सके तो तुम इस जगत के सृष्टा से कैसे प्रेम कर सकोगे?

ऐसा समझो, तुमने किसी कवि की कविता की किताब फाड़कर फेंक दी और कहते हो कविता में हमारा कोई रस नहीं, हम तो कवि से प्रेम करेंगे। कवि से तुम कैसे जुड़ पाओगे, तुम्हें उसकी रचना ही पसंद न आई? यदि तुम मानते हो कि ये जगत ईश्वर की रचना है तो पहले कम से कम ईश्वर की रचना से तो प्रेम करना सीखो। वही प्रेम विकसित होते–होते एक दिन ईश्वर तक ले जाएगा। लेकिन जब तुम्हें ये लोग ही अच्छे नहीं लगते, ये दुनिया ही अच्छी नहीं लगती तो याद रखना

तुम भी इसी दुनिया के हिस्से हो, तुम खुद को भी प्रेम न कर पाओगे। तुम अपनी अंतरात्मा को भी प्रेम न कर पाओगे। थोड़ा प्रेम करना सीखो, ध्यान की कला बाद में आएगी।

ओशो कहते हैं – 'ध्यान अकेले में ही प्रेम से भर जाने का नाम है और प्रेम दूसरे के साथ ध्यान में उतर जाने की कला है। जब किसी दूसरे व्यक्ति के संपर्क में ध्यान घटता है, तो हम उसे प्रेम कहते हैं। और जब बिना किसी दूसरे व्यक्ति के, अकेले ही प्रेम घट जाता है, तो उसे हम ध्यान कहते हैं।'

ध्यान यानी अपनी अंतरात्मा से प्रेम। प्रेम यानी सबके साथ आत्मीयता। किसी एक को साधने से आरंभ करो, अंततः दोनों सध जाएंगे। लेकिन तुम्हारे प्रश्न से स्पष्ट है कि ध्यान से आरंभ तुम न कर सकोगे। अगर तुम ध्यानमार्गी होते तो ध्यान में सफलता मिल ही गई होती। फिर तो सवाल ही न उठता! सवाल उठा है, इसका मतलब ही है कि सीधे ध्यान नहीं सध सकेगा। तुम्हारे लिए मेरा उत्तर है कि प्रथम प्रेम साधो, ध्यान द्वितीयम्।

सबसे बड़ा कर्म और धर्म

प्रश्न–2: जीवन क्या है? इसका वास्तविक अर्थ क्या है? जीवन में सबसे बड़ा कर्म और धर्म क्या है? और मुक्ति का साधन क्या है?

यह हमारा साधारण–सा दिखने वाला जीवन, भीतर के उस परम–जीवन को पाने की भूमिका है। यह जो जीवन हमें मिला है यह सिर्फ एक अवसर है। यदि हम इसका सदुपयोग कर लें तो हम उस परमात्मा–रूपी परम–जीवन को पा सकते हैं। यह जिन्दगी केवल एक मौका है, इसमें असली जिन्दगी की खोज करनी है। सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो वास्तविक जीवन की तलाश में निकलते हैं, जिनके जीवन में यह प्रश्न पैदा होता है कि मैं क्यों हूं, मेरे होने का तात्पर्य क्या है? यह जीवन किसलिए है?

बड़े सौभाग्यशाली हो जो तुम्हारे भीतर यह सवाल पैदा हुआ। अब यही सवाल तुम्हें आगे बढ़ाएगा, खोजबीन में लगाएगा, विकास की दिशा में संलग्न करेगा। यह जीवन तो फिर निस्सार–सा नजर आने लगता है। एक और सार्थक जीवन की तरफ आखें उठनी शुरू हो जाती हैं। अन्वेषण आरंभ हो जाता है।

आप पूछते हैं, सबसे बड़ा धर्म क्या है? सबसे बड़ा धर्म उस परम जीवन को खोजना है। मैं नहीं कहता हिन्दू धर्म या मुसलमान धर्म, ईसाई या पारसी धर्म, जैन या बौद्ध धर्म; मैं आपसे कहता हूं – आपके भीतर छिपा जो परमात्मा है उसे खोज लेना ही सबसे बड़ा धर्म और सबसे बड़ा कर्म है। उसको जीवन की प्रेफरेंस–लिस्ट में सबसे ऊपर रखना है, वही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि वह घटित न हुआ तो जिन्दगी बेकार ही जाएगी।

सुनी होगी आपने सिकंदर की कहानी। विश्व–विजेता सिकंदर जब मरा तो उसने मृत्यु पूर्व अपने वजीरों से कहा कि मेरे दोनों हाथ अर्थी के बाहर लटके रहने देना। लोगों ने पूछा – क्यों? सिकंदर ने कहा – ताकि दुनिया देख ले कि दुनिया को जीतने वाला सिकंदर भी भिखारी की तरह खाली हाथ जा रहा है।

जैसा जीवन हम जी रहे हैं वह तो असार ही नजर आता है। तुम कितना ही धन कमा लो उससे क्या होगा? कितनी ही बड़ी दुनिया जीत लो, कितने ही ज्ञानी हो जाओ, उससे क्या होगा? एक दिन तो मिट्टी में मिल जाओगे। सारा बैंक–बैलेंस यहीं पड़ा रह जाएगा। स्मृति–भंडार जिस खोपड़ी में समाया है वह जल के राख हो जाएगी। ज्ञान भी एक प्रकार का सूक्ष्म बैंक–बैलेंस ही है। जिन ऊंचे पदों पर तुम पहुंच गये हो, तुम्हारे विदा होते ही कोई और उन कुर्सियों पर बैठा होगा। मृत्यु के समक्ष यह सब तो व्यर्थ हो जाएगा। हम जिसे जीवन कहते हैं वह जीवन कम, आजीविका ज्यादा है। बस हम अपनी आजीविका, रोजी–रोटी कमा रहे हैं इससे ज्यादा कुछ और उसका अर्थ नहीं। वह तो जानवर भी कर रहे हैं– वे भी अपना पेट भर लेते हैं, घोंसला बना लेते हैं, कहीं छुपने के लिये छांव ढूंढ़ लेते हैं। इसमें उपयोगिता तो है मगर कोई सार्थकता नहीं। यदि हम भी बस अपनी रोजी–रोटी चलाने के लिये जी रहे हैं, बच्चे पैदा करने के लिये जी रहे हैं, तो हम भी पशु–पक्षी की भांति ही जी रहे हैं, मनुष्यता की अभी शुरुआत नहीं हुई।

मनुष्यता की शुरुआत तो उसी दिन होती है जब हम अपने भीतर छुपे उस परम जीवन को, परमात्मा को जानने निकलते हैं; और न केवल जान लेते वरन् वही हो भी जाते हैं। आंतरिक ज्ञान में अद्वैत घटता है। वहाँ दृश्य व द्रष्टा अलग–अलग नहीं, ज्ञाता व ज्ञेय एक ही होते हैं।

...तो याद रखना यह जीवन एक अवसर है परम जीवन को जानने का।

उसके बाद ही जीवन में कृतार्थता आती है, धन्यता आती है, संतोष आता है। उसके पहले जीवन में कोई तृप्ति ओर परितोष संभव नहीं, तुम कितने ही अमीर हो जाओ संतुष्ट न हो पाओगे। चाहे तुम प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति हो जाओ, परंतु तृप्त न हो पाओगे... और अच्छा ही है कि न हो पाओ। तुम्हारे भीतर का असंतोष तुम्हें धक्का मारता रहेगा कि चलो... अभी कुछ और खोजना है।

सितारों के आगे जहाँ और भी हैं;
अभी इश्क के इम्तहाँ और भी हैं।

हमारे भीतर का वह असंतोष हमें चलाए रखता है कि चलो... चरैवेति–चरैवेति...अभी रुकने का समय नहीं आया, अभी विश्राम की घड़ी नहीं आई। आखिर हमारा मन क्या पाना चाहता है?

संसार में जो लोग सफल हो जाते हैं उन्हें गहन असफलता का अहसास अपने भीतर होता है, और इसलिये जहाँ–जहाँ समाज संपन्न हो जाता है, समृद्धि हो जाती है, वहाँ–वहाँ धर्म की खोज शुरू हो जाती है। भारत कभी सोने की चिड़िया था, उस समय बड़े अद्‌भुत धार्मिक लोग हमारे देश में हुए थे। आज पश्चिम में खूब समृद्धि आ गई है इसलिये धर्म की प्यास वहाँ बड़ी तेजी से पैदा हो गई है। जैसे ही बाहर सब सुख–सुविधाएं हो गईं वैसे ही सवाल पैदा होता है कि अब करना क्या? सब कुछ तो मिल गया जो चाहा था, और इसमें कोई सार्थकता नजर आती नहीं। ठीक है पेट भर गया, तन ढंकने को कपड़े हैं, रहने को घर है, सुरक्षा है, भविष्य का इन्तजाम है, सब अच्छा है। पर क्या इतना ही पर्याप्त है? नहीं, यह जरूरी तो है परन्तु पर्याप्त नहीं। इट इज नेसेसरी बट नॉट इनफ।

ओशो संसार के विरोध में नहीं हैं। याद रखना, धन भी कमाना होगा, मकान भी बनाना होगा, कार भी खरीदनी होगी, सब कुछ करना होगा, लेकिन वही सब–कुछ नहीं, काफी नहीं है। उससे संतोष नहीं मिल जाएगा। प्राणों को तो तृप्ति मिलेगी अपने भीतर की उस परम संपदा को पाने से, जिसे पाकर मीराबाई कह उठती हैः

पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सत्‌गुरु किरपा कर अपनायो।।

उस राम रतन धन को अर्थात् ओंकार को अपने भीतर पाओ, उसमें डूबो और विलीन हो जाओ, वही सबसे बड़ा कर्म और धर्म है। उसी के लिये यह जीवन है और वही मुक्ति का उपाय है।

क्रोध से छुटकारा

प्रश्न–3ः मेरे मन में बहुत क्रोध पैदा होता है। मैंने उसे खत्म करने का संकल्प लिया है, मगर मेरा विल पावर कमजोर होने की वजह से मैं बारंबार हार जाता हूं। कृपया क्रोध से छुटकारा पाने का कोई सरल उपाय बताएं।

जैसा मैंने कहा कि विचारों से मत लड़ो वैसे ही मैं आपसे कहना चाहूंगा कि कृपा करके क्रोध से भी मत लड़ो क्योंकि यह जो क्रोध से लड़ने वाला आदमी है यह क्रोधी ही है। आपके भीतर कौन है जो क्रोध को मिटा डालना चाहता है, क्रोध की गर्दन दबा देना चाहता है? क्या यह स्वयं क्रोध ही नहीं है?

स्वयं क्रोध ही क्रोध को नष्ट करने की सोच रहा है, क्रोधी मन खुद पर ही नाराज हो रहा है। अगर वह जीत भी गया तो भी क्रोध ही जीतेगा। इस विधि से तो कोई छुटकारा न हो सकेगा। तुमने अपने भीतर दो खंड कर लिये, दोनों ही क्रोध से भरे हुए। एक खंड दूसरे खंड को मिटा डालने को उत्सुक हो गया। यह जीत अहिंसा या अक्रोध की जीत न होगी। जैसे एक आतंकवादी को मिटाने के लिये सरकार जो उपाय करती है वह और महा–आतंकवादी उपाय होता है। जो आतंकवादी कर रहा है वह भी गलत और उसे मिटाने के लिये फिर शासन जो करता है वह और भी गलत हो जाता है। पहले अपराधी से भी बड़े दूसरे भयंकर अपराधी खड़े करने पड़ते हैं तब जाकर वे पहले अपराधी को मिटा पाते हैं। फिर वे नये अपराधी हुकूमत में आ जाते हैं, मुश्किल और उलझ जाती है। तुम क्रोध को मिटाने की कोशिश करोगे तो कुछ ऐसा ही उपद्रव निर्मित होगा। तुम्हारे भीतर का क्रोध ही सवाल पूछ रहा है कि अपने भीतर के क्रोध से छुटकारा कैसे पाऊं?

मैं आपसे निवेदन करूंगा कि कृपया क्रोध से आंखें मोड़ लें, आप तो प्रेम की तरफ आंखें लगाएं। प्रेम कैसे विकसित हो, करुणाभाव कैसे जन्मे, ज्यादा संवेदनशील हम कैसे बनें, यह हमारी दिशा होनी चाहिये। हाँ, जो व्यक्ति प्रेमपूर्ण हो गया उसका क्रोध तो अपने–आप छूट ही जाएगा। ऐसा समझें कि एक कमरे में अंधेरा है और आप पूछते हैं कि अंधकार से छुटकारे का क्या उपाय है? क्या तलवार चलाकर अंधेरे के टुकड़े–टुकड़े कर के फेंक दें, कि कुश्ती और उठा–पटक करें, घूंसाबाजी करें या जूडो–कराटे? पोटली में बांध कर अंधेरे को बाहर फेंक आएं या बंदूक चलाएं कि पहलवानों को बुलाकर अंधेरे की पिटाई करवा दें?

नहीं, इन विधियों के द्वारा आप अंधेरे से बिल्कुल न जीत पाएंगे; क्यों? क्योंकि अंधकार की अपनी स्वयं की कोई विधायक सत्ता नहीं, उसका कोई पॉज़िटिव एक्ज़िसटेंस नहीं है। अंधकार प्रकाश की अनुपस्थिति है। अनुपस्थिति के साथ लड़ा नहीं जा सकता, अनुपस्थिति के साथ कुछ नहीं किया जा सकता। अनुपस्थिति का मतलब है जो है ही नहीं। सच में अंधेरा होता ही नहीं है, वह तो केवल प्रकाश की गैर–मौजूदगी है। इसलिये अंधकार के साथ हम कुछ भी न कर सकेंगे। हमारी सारी मेहनत हमारे अपने हाथ–पैर ही तोड़ देगी। अगर हमने घूंसे–लातें चलाईं, तलवारें घुमाईं, तो डर है कि हम अपने–आपको ही चोट न पहुंचा लें। अंधेरे का कुछ न बिगड़ेगा। और तब हमें वहम पैदा होगा कि देखो अंधेरा महा–शक्तिशाली है, हम जीत नहीं पाये। लेकिन हमारा यह निष्कर्ष भी गलत होगा।

गलती कहाँ हुई? अंधकार के साथ कुछ करने का सवाल नहीं, करना है कुछ तो प्रकाश के साथ करो। विद्युत–बल्ब या एक दीपक जला दो और तुम पाओगे अंधकार गायब! ऐसा नहीं होगा कि आपने रोशनी जलाई तो आपको खिड़की में से जाता हुआ दिखाई दिया कि वह भागा जा रहा है अंधेरा। अंधेरा न कहीं आता है न जाता, वह तो है ही नहीं।

हाँ, प्रकाश के साथ जरूर कुछ किया जा सकता है। मैं आपसे निवेदन करूंगा– प्रेम प्रकाश है, क्रोध अंधकार है। क्रोध के साथ आप कुछ न करें, प्रेम के साथ करें। प्रेम का दीया जलाएं भीतर। और तब आप पाएंगे जैसे–जैसे प्रेम का प्रकाश फैलने लगा क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, हिंसा का अंधेरा विदा होने लगा। जिस दिन आपकी अंतरात्मा प्रेम के प्रकाश से पूरी तरह लबालब भर जाएगी, उस दिन आप पाएंगे– न कहीं कोई अहंकार है, न क्रोध है, न कोई द्वेष है, न कोई ईर्ष्या है। वे कभी पाए ही नहीं जाते, उनसे कहीं मुलाकात नहीं होती। ऐसा नहीं है कि आप उनसे जीत गए। जीतेंगे तो तब, जब वे वास्तव में हों!

क्रोध के साथ कुछ भी न करें। प्रेम का प्रकाश जलाने की कोशिश करें। विधायक साधना में संलग्न हों। प्रेम आएगा तो काम और लोभ तिरोहित हो जाएंगे; और उनके साथ ही क्रोध भी विलीन हो जाएगा। कामुक और लोभी व्यक्ति प्रेमरहित होता है और वह क्रोधी होने को बाध्य है।

ओशो कहते हैं – अगर काम और लोभ विसर्जित हो जायें, क्रोध तत्क्षण

विलीन हो जाता है। अब यह बड़े मजे की बात है और मेरे पास लोग आते हैं, जो पूछते हैं, क्रोध कैसे मिटे? मेरे पास कोई आदमी नहीं आया जिसने पूछा हो कि लोभ कैसे मिटे? कोई आदमी नहीं आया अब तक जिसने पूछा हो, काम कैसे मिटे?

प्रेम की कमी से उत्पन्न बीमारियों– कामना, वासना, महत्त्वाकांक्षा, धन–लोलुपता, पदाकांक्षा, मोह–ममता आदि को तो हम बढ़ाना चाहते हैं, किंतु उनके साथ अनिवार्यरूपेण जुड़े क्रोध से मुक्त होना चाहते हैं। ...क्योंकि क्रोध से फौरन हमें तकलीफ पहुंचती है। महत्त्वाकांक्षा से सीधी–तुरंत तकलीफ नहीं होती।

...लेकिन जो व्यक्ति इतना जागरूक नहीं है कि क्रोध की जड़ – महत्त्वाकांक्षा को देख पाए, और महत्त्वाकांक्षा की जड़ें प्रेम–रहित अंधेरी भूमि में फैलती हैं, इस बात को समझ पाए, वह कभी भी क्रोध से मुक्त नहीं हो पाएगा।

अंतिम बात, मेरी बातों को समझने मात्र से आत्म–रूपांतरण नहीं होगा। समझ उपयोगी है किंतु पर्याप्त नहीं। पाक–शास्त्र पढ़ने से भूख नहीं मिटती और दीपक के चित्र से अंधेरा नष्ट नहीं होता। समझ से साधना विकसित होनी चाहिए। तो मैं निवेदन करता हूं कि अभी मा ओशो प्रियाजी एक ध्यान विधि कराएंगी। उसमें तल्लीनता से डूबें। घर जाकर तीन माह निरंतर इसे करें तो जिंदगी में बदलाहट आ सकती है। बातचीत से भूमिका बनती है, असली परिवर्तन तो कुछ करने से आता है। तो सभी मित्र तैयार हो जाएं। थोड़ा–थोड़ा दूर खिसक जाएं। कोई किसी को स्पर्श न कर रहा हो, ताकि हम दूसरे को भूल सकें। आत्म–स्मरण से भर सकें। मा ओशो प्रियाजी अब ध्यान कराएंगी।

– ओशो शैलेन्द्र

ओशो प्रियाजी के संग ब्रह्मनाद ध्यान

ओशो शैलेन्द्रजी ने थोड़ी देर पहले मीराबाई का गीत उद्धृत किया था–

पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।

वस्तु अमोलक दी मेरे सत्गुरु किरपा कर अपनायो।।

उस राम रतन धन अर्थात् ओंकार को अपने भीतर पाने की सबसे सुगम विधि हमारे परमगुरु ओशो ने दी है– ब्रह्मनाद ध्यान। तिब्बती बौद्ध साधकों में यह विधि बहुत प्रचलित रही है। भारतीय योग पद्धति में इसे भ्रामरी प्राणायाम कहा जाता है। इसे करने का सबसे उपयुक्त समय है सुबह भोर होने के पूर्व। रात को

सोते समय करके सो सकते हैं। कभी रात में नींद खुल जाने पर भी कर सकते हैं– उस समय बिना कैसेट बजाए धीमे स्वर में करें ताकि परिवारजनों की नींद में बाधा न पड़े। आंखों पर पट्टी, रूमाल या स्कार्फ बांधकर ध्यान किया जाए तो और अच्छा परिणाम आएगा। अंतिम चरण में लेटना ज्यादा उपयोगी होगा। यदि आपको तकिया, कंबल आदि की आवश्यकता लगे, तो पहले से उसकी व्यवस्था कर लें। अगर नींद लग जाए तो उसे सहजता से स्वीकार लें।

इस विधि के चार चरण हैं– मंगलकामना, भ्रामरी प्राणायाम, शिथलीकरण और आत्म–स्मरण।

प्रथम दो चरण सुखासन में बैठकर करेंगे। कुर्सी पर आराम से बैठकर भी इसे किया जा सकता है। शरीर विश्रामपपूर्ण हो, रीढ़ व गर्दन सीधी हो, लेकिन कहीं भी तनाव न हो। चेहरा शिथिल रहे। नीचे का जबड़ा ढीला रहे।

मंगलकामना करने के बाद नाक से गहरी धीमी सांस लेंगे। फिर सांस छोड़ते समय मुंह बंद रखते हुए भौंरे जैसे गुंजार की ध्वनि निकालेंगे। यह ध्वनि मन को विश्रांति देती है, शरीर के लिए भी स्वास्थ्यप्रद है। इस ध्वनि में डूबकर चेतना का शुद्धिकरण हो जाएगा। इसे आंतरिक गंगा स्नान समझें। प्राणायाम का लाभ भी मिल जाता है। अंतर्नाद से मिलती–जुलती यह ध्वनि हमारे सातों चक्रों को सक्रिय करती है। यह ध्वनि समाधि का द्वार खोलने में सक्षम है।

...अब संगीत–कैसेट के निर्देशानुसार आरंभ करें।

(विधि के अंत में)– जब तक आपकी मौज हो ध्यान में डूबे रहें। धीरे–धीरे आत्म–स्मरण को अपने जीवन की शैली बना लें।

धन्यवाद!

नमस्कार!

–मा ओशो प्रिया

प्रवचन–7

अहम् एवम् ब्रह्म

प्रश्नसार–

1. दुष्ट अहंकार के अवरोध को कैसे नष्ट करें?
2. कृष्ण व कबीर– अहं–महिमा या ब्रह्म–महिमा?

दुष्ट अहंकार को कैसे नष्ट करें?

प्रश्न–1ः अहंकार के अवरोध को दूर करने में ही प्रभु प्राप्ति संभव है, ऐसा अनेक संतों का कथन है। यह दुष्ट अहंकार क्या है और इसे कैसे नष्ट करें?

–स्वामी आनन्द सरस्वती

जिन्होंने ऐसा कहा है वे संत नहीं, वे स्वयं भी दुष्ट ही रहे होंगे। नष्ट करने की बात संतों का कथन नहीं हो सकती। और अहंकार को मिटाने की कोशिश करेगा कौन? स्वयं अहंकार ही करेगा। यह तो ऐसे ही हुआ कि कोई अपने ही जूते के बंध पकड़कर स्वयं को उठाने की कोशिश करे। उसे उठाना तो नामुमकिन है। कोई अपने ही जूते के बंध पकड़कर स्वयं को कैसे उठा सकता है? ठीक वैसे ही अहंकार ही अहंकार को मिटाने की कोशिश करेगा, तो वह कभी भी संभव नहीं हो सकेगा। इस कोशिश में केवल इतना ही होगा कि उसे नष्ट करने की कोशिश करने वाला आत्मग्लानि से भर जायेगा, स्वयं को असमर्थ महसूस करेगा कि कोई काम जो मुझे करना चाहिए, मैं नहीं कर पा रहा हूँ। वह केवल भीतर द्वन्द्व में ही टूट जायेगा; उसका एक हिस्सा अपने ही दूसरे हिस्से को मिटाने की कोशिश करेगा। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे किसी व्यक्ति का दाँया हाथ और बाँया हाथ आपस में लड़ने लगें। कौन सा हाथ जींतेगा? यह जीत कभी भी नहीं हो सकेगी, लेकिन इसमें समय और शक्ति खराब होगी।

आनन्द सरस्वती, तुम पूछते हो यह दुष्ट अहंकार क्या है और इसे कैसे मिटायें, कैसे इसे नष्ट करें? अहंकार अंधकार के समान है। अतीत में अहंकार की बहुत निन्दा की गई। उस निन्दा से लाभ तो कुछ भी न हुआ, नुकसान जरूर हुआ। आध्यात्मिक साधक द्वन्द्व में टूट गए, अपने ही भीतर आत्म–संघर्ष में पड़ गए। जैसे ओशो ने सेक्स को पुनः प्रतिष्ठित किया, अतीत में हजारों–हजारों साल से सेक्स निन्दित था, ठीक उसी प्रकार मैं अहंकार को पुनः प्रतिष्ठित करना चाहता हूँ। अहंकार के साथ दुश्मनी का कोई भी अर्थ नहीं। इसे मिटाने की नहीं, समझने की कोशिश करो। जैसे.... बीज के चारों तरफ एक कड़ी खोल होती है, मुर्गी का अण्डा सफेद कवच में बन्द होता है, वे रक्षा के उपाय हैं। वरना अण्डा बच ही नहीं पायेगा, बीज बच ही नहीं पाएगा। हाँ, लेकिन एक दूसरी बात ख्याल में रखना कि यदि अण्डे का कवच टूटने से इनकार कर दे तो उसके भीतर का जो जीव है, वह मुर्गी का चूज़ा नष्ट हो जायेगा।

ठीक वैसे ही एक सीमा तक अहंकार का रक्षा कवच उपयोगी है। बचपन में यह तीन साल से लेकर सात साल के अंदर निर्मित होता है। फिर एक समय आना

चाहिए– एक मैच्योरिटी, एक परिपक्वता, एक विवेक का जागरण, जब हमारी चेतना इस कवच से बाहर निकले, इस सुरक्षा–कवच के अन्दर ही न मर जाये। सुरक्षा की दीवार ही कब्र न बन जाए।

अहंकार अपने आप में बुरा नहीं है लेकिन केवल अहंकार के अन्दर ही बन्द रह जाना अवश्य बुरा है। बीज जिस कड़े कवच के अन्दर बन्द है, अगर वह खोल गलने से इनकार कर दे तब तो फिर बीज का अंकुरण न हो सकेगा। यद्यपि खोल बहुत उपयोगी है, अनिवार्य है, उसके बिना यह बीज बच ही नहीं सकता था। इसकी उपयोगिता को पहचानो, इससे दुश्मनी छोड़ो, समझने की कोशिश करो। अहंकार प्राकृतिक था, जरूरी था, उसी की वजह से तुम अपने जीवन की रक्षा कर पाए, जगत के साथ संघर्ष कर पाए, अपने पैरों पर खड़े हो पाए। लेकिन इससे बाहर निकलना भी उतना ही प्राकृतिक है।

अहंकार तो प्राकृतिक है ही, इसलिए मैं उसका फिर से सम्मान स्थापित करना चाहता हूँ। जैसे प्रकृति में हर चीज का सम्मान है ठीक वैसे ही अहंकार भी हमारे प्राकृतिक गुणों में से एक है। इसको सहज आदर की दृष्टि से देखो, दुश्मन की दृष्टि से नहीं। वह दुश्मन है भी नहीं, बल्कि जीवन का रक्षक है। यह जो 'मैं हूँ' का भाव है, 'मैं जगत से भिन्न हूँ' का भाव है, यह हमारे विकास में सहयोगी है, एक सीमा तक। एक सीमा के बाद वही विकास में अवरोध बन जायेगा।

जैसे जूता उपयोगी है.... निश्चित रूप से बहुत उपयोगी है सड़क पर चलने के लिये, कंटकाकीर्ण मार्गों पर गमन करने के लिए उपयोगी है, बेडरूम में सोने के लिए नहीं! वहाँ उसे उतारकर रख दो। जब तुम ध्यान में डूबते हो, समाधि में डूबते हो, वहाँ अहंकार की कोई जरूरत नहीं है। यदि तुम उसे वहाँ लेकर जाओगे, तुम भीतर जा ही नहीं पाओगे; क्योंकि जहाँ 'मैं' का भाव बना है, वहाँ 'पर' का भाव, 'दूसरे' का भाव भी बना ही रहेगा। तुम बाहर के जगत से ही सम्बन्धित होते रहोगे, अपनी अन्तर्चेतना से न जुड़ पाओगे। इस बात को समझो कि जूता कहाँ उपयोगी है, कहाँ उपयोगी नहीं है। सवाल मिटाने का नहीं है, सवाल समझने का है।

सबसे पहले तो दुश्मनी का भाव त्यागो। हमारा जो तादात्म्य बन गया है शरीर और मन से, उसे सामान्यतः हम अहंकार कहते हैं। पुरुषों में ज्यादातर मन से तादात्म्य है, स्त्रियों में ज्यादातर देह से तादात्म्य है; कम–ज्यादा का भेद है। समझो कि पुरुषों में साठ प्रतिशत मन से तादात्म्य है, चालीस प्रतिशत देह से। किसी पुरुष से कह दो कि तुम्हारी शक्ल–सूरत ठीक नहीं है, तुम सुन्दर नहीं हो देखने में, उसे इतना बुरा नहीं लगता। किसी स्त्री से कह दो कि तुम कुरूप हो, तो बहुत मुश्किल हो

जायेगी, उसके अहंकार को बड़ी चोट लगेगी।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन का विवाह हुआ। पहली रात, जैसा कि मुसलमानों में रिवाज होता है, सुहागरात को ही उसकी पत्नी ने पूछा– 'मुझे बता दो कि परिवार के किन–किन सदस्यों के सामने मुझे बुरक़ा उठाने की अनुमति है?' नसरुद्दीन ने कहा कि 'मुझे छोड़कर किसी के भी सामने उठा लो। मुझे भर न डराना, मेरे सामने बस बुरक़ा ढांक के रहना।'

दूसरे दिन सुबह पत्नी ने शिकायत की – 'घर का जो टॉयलेट है, उसकी खिड़की में परदा नहीं है। और पड़ोसी के टॉयलेट की खिड़की से लोग झांकते हैं। तो अपने टॉयलेट में परदा लगवा दो।' नसरुद्दीन ने कहा 'फिजूल पैसे खर्च मत करवा, दो–चार दिन में वे खुद ही अपनी खिड़की में परदा लगा लेंगे। चिंता न करो, देख लेने दो उन्हें जी भर के। उन्हीं के पैसे खर्च होंगे, थोड़ा सा धीरज रखो।'

पत्नी को भारी चोट लगी, अहंकार तिलमिला गया।

स्त्रियों का तादात्म्य देह से है, पुरुषों का तादात्म्य देह से नहीं है। किसी पुरुष को चोट पहुँचानी हो तो कहो कि तुम्हारे विचार ठीक नहीं हैं, तुम्हारी धारणा गलत है, तुम्हारी मान्यता गलत है, तब उसे बहुत चोट लगती है। कहो कि तुम्हारी फिलॉसफी गलत है, तब उसके हृदय में बड़ी पीड़ा पहुंचती है। मन के साथ, विचारों के साथ उसका ज्यादा गहरा तादात्म्य है। जब किसी ने कहा कि तुम्हारे विचार गलत हैं, तब पुरुष को ऐसा नहीं लगता कि विचारों को गलत कहा गया, उसको लगता है कि उसे गलत कहा गया है। वह लड़ने–झगड़ने को तैयार हो जायेगा। दंगे–फसाद हो जाएंगे, युद्ध छिड़ जाएंगे।

स्त्रियों से कहो कि विचार गलत हैं, उन्हें कोई चिन्ता नहीं, विचार होंगे गलत... उनसे क्या सरोकार? रहने दो गलत... लेकिन मैं तो सुन्दर हूँ! स्त्री का ज्यादा तादात्म्य देह से है, पुरुष का ज्यादा तादात्म्य मन से है। सामान्यतः हम जिसे अहंकार कहते हैं, वह हमारे व्यक्तित्व का सबसे बाह्य परिधि वाला हिस्सा है, सबसे बहिर्अंग है। जैसे तुम्हारे घर में बगीचे के बाहर एक बाउण्ड्री है, फेंसिंग वॉल है, इसका उपयोग है। जब तुम पड़ोसी से खड़े होकर बात करते हो दीवार के पास, फेन्स के पास, वह उपयोगी है। दरवाजे से हर कोई भीतर नहीं घुस आता, भीतर तुम्हारी प्राइवेसी है। ठीक वैसे ही अहंकार हमारी परिधि है, वह हमारी फेन्स है, बाहर की दीवार है, डिफेन्स का उपाय है; लेकिन अगर हम वहीं रहने लगें तो यह पागलपन हो जाएगा। भीतर सुन्दर कक्ष हैं, हमें भीतर वहाँ भी पहुँचना है। केवल बाहर अहम् ही नहीं, भीतर ब्रह्म भी है। वहाँ हमें जाना है, उसे पहचानना है, भीतर जो हमारा ब्रह्म–स्वभाव है।

'मैं' या 'अहम्' शब्द का जब हम उपयोग करते हैं तो इसके बहुत अर्थ हैं। विशेष रूप से मैं तीन अर्थों पर ध्यान ले जाना चाहूँगा। एक तो हुआ देह या मन, उससे तादात्म्य, वही सामान्यतः अहंकार कहलाता है। दूसरा, जब कोई व्यक्ति अपने साक्षी को कहता है 'मैं'; मैं साक्षी हूँ, मैं चैतन्य हूँ, मैं जागरुकता हूँ। और तीसरा, जब कोई भीतर के परमात्म-तत्व को, ब्रह्म को कहता है 'मैं'। इस एक शब्द के तीन अर्थ हो सकते हैं।

महिमा- अहम् की या ब्रह्म की?

प्रश्न-2: एक और प्रश्न उपरोक्त सन्दर्भ में पूछा गया है- कबीर साहब का वचन है कि जो व्यक्ति बहुत 'मैं-मैं' करता है, वह एक दिन 'मैं-मैं' करने वाले बकरे की तरह कसाई के हाथों द्वारा काटा जाता है। जिस 'मैं' की इतनी निन्दा कबीर साहब ने की है, उसी 'मैं' की सबसे बड़ी उद्घोषणा ऋषियों ने 'अहम् ब्रह्मास्मि' के रूप में की तथा 'मामेकम् शरणम् व्रज' कहकर श्रीकृष्ण ने उसकी महिमा स्थापित की। कृपया इस पहेली को सुलझायें

-स्वामी आनन्द भारती

तुम किसे 'मैं' कहते हो, उस पर निर्भर करेगा। कौन है मैंः तन-मन-भाव, चेतना या परमात्मा? तुम इन सबका जोड़ हो। तुम्हारा तादात्म्य किससे है- परिधि से, मध्य से अथवा केन्द्र से? उस पर अर्थ निर्भर करेगा। जब कहते हैं कबीर 'मैं-मैं' करने वाले बकरे की बात और निन्दा करते हैं तो उनका तात्पर्य है कि केवल परिधि पर ही मत खड़े रहो। तुम केवल देह और मन ही नहीं हो, इसके भीतर चलो, यह संदेश है। लेकिन जब हम सन्तों के कथन का अर्थ निकालते हैं, तब हम अपना ही अर्थ उसमें भर देते हैं। वे कहते हैं कुछ, हम समझते हैं और कुछ।

मुझे स्मरण आता है कि एक बार ओशो से कोई कह रहा था कि आप शंकराचार्य का सिद्धान्त समझाते हैं कि जगत माया है। यह बात मुझे समझ में नहीं आती। क्या सत्य है? क्या भ्रम है? कृपया किसी ऐसे सरल उदाहरण से समझायें कि माया का सिद्धान्त मुझ जैसा सामान्य व्यक्ति भी समझ सके। ओशो ने कहा कि अभी वर्तमान के ही एक उदाहरण से तुम्हें समझाता हूँ। मैं बोल रहा हूँ, तुम सुन रहे हो, यह सत्य है। लेकिन यदि तुम सोचते हो कि तुम समझ रहे हो, तो यह तुम्हारा भ्रम है, यह माया है।

बुद्धों की बात हम इतनी आसानी से समझ नहीं पाते। हम अपना ही अर्थ डाल देते हैं। वे कहते हैं कुछ, हम कुछ और पकड़ लेते हैं। कबीर कह रहे हैं सिर्फ इतनी सी बात कि केवल अहंकार में ही मत रहो, केवल परिधि पर, अपने मकान के बाहर की दीवार पर ही मत खड़े रहो, भीतर भवन में बहुत सुन्दर कक्ष हैं, वहाँ भी जाओ। हम अपने अंदर के सनातन सत्य को विस्मृत कर गए हैं, और परिवर्तनशील में उलझ गए हैं। मैंने सुना है–

संसद भवन में एक चपरासी दूसरे चपरासी सेः 'यार, इतने गुस्से में क्यों बैठा है?'

दूसरा चपरासीः 'यह बेअक्ल नया मंत्री बेकार में ही मुझे डांट गया है।'

पहला चपरासीः 'अरे इसमें इतना गुस्सा होने की क्या जरूरत है?'

दूसरा चपरासीः 'है क्यों नहीं यार, एक टेंप्ररी आदमी परमानेंट आदमी को डांट गया।'

परमानेंट के ऊपर टेंप्ररी को हावी मत होने देना। तुम केवल सांयोगिक देह और मन, केवल व्यक्तित्व, पर्सनैलटी ही नहीं हो, तुम्हारे भीतर एक स्थायी इंडीविजुअलिटी भी है; और इस इंडीविजुअलिटी के भीतर और केन्द्र में चलो, वहाँ सदाबहार यूनीवर्सलिटी है। मन संसद–भवन है। वहाँ कभी कुछ टिकता नहीं। विचार की कीमत मंत्री से ज्यादा नहीं– आज है, कल नहीं। कितनी तीव्र गति से विचार बदल जाते हैं, कभी गौर से देखना। शाश्वत को बहुमूल्य जानो, फैशन को कीमती मत समझो, मगर हमारी दृष्टि में नए का दाम है।

सरदार विचित्तरसिंह एक म्यूजियम में गये और उनसे एक पुतला टूट गया।

अधिकारी ने कहा– तुमने 5000 वर्ष पुराना पुतला तोड़ दिया। पांच लाख रुपये का जुर्माना भरना होगा।

विचित्तरसिंह बोले– शुक्र है! मैंने तो समझा कि वह नया था। नया होता तो शायद पांच करोड़ जुर्माना देना पड़ता।

इस प्रकार हमारे तीन तल हैं– एक पर्सनैलिटी, दूसरा इंडीविजुअलिटी और तीसरा यूनीवर्सलिटी। एक हमारे सबसे बाहर की परिधि– देह और मन। दूसरा हमारी चेतना, हमारी साक्षी आत्मा; और तीसरा परमात्मा– आत्मा का भी केन्द्र। ऐसे समझें... एक बड़ा वर्तुल बनाएं, वह हमारा बाहर का कवच, उसके भीतर एक छोटा वर्तुल– वह हमारी चेतना। और उसके भी केन्द्र में, आत्मा के केन्द्र में है परमात्मा। हम इन सबका जोड़ हैं।

मैं बाहर की परिधि की भी निन्दा नहीं करना चाहता। अगर परिधि न होती तो केन्द्र कैसे होता? बिना परिधि के कभी केन्द्र हो सकता है? इस सृष्टि की डिजाइन में ही यह नियम है कि जहाँ बीज है, उसके बाहर एक कवच है। केन्द्र तभी हो सकता है

जब परिधि हो। केन्द्र है तो परिधि है, परिधि है तो केन्द्र है; दोनों अन्योन्याश्रित हैं। शरीर है तो भीतर चेतना प्रकट हो पाती है। अगर शरीर खो जाए तो चेतना की अभिव्यक्ति समाप्त हो जायेगी। परमात्मा भी प्रकट होना चाहे, शाश्वत भी प्रकट होना चाहे तो क्षणभंगुर का सहारा लेना पड़ता है। बिना क्षणभंगुर के शाश्वत भी प्रकट नहीं हो सकता।

तो 'मैं' की निन्दा कबीर साहब ने नहीं की है, केवल एक तथ्य की घोषणा की है। लेकिन तथ्य की घोषणा को हम समझ लेते हैं निन्दा। यह हमारी मति-मन्दता है। जैसे कोई व्यक्ति कहे कि बेडरूम में अपने बिस्तर पर जूता पहनकर मत सोओ। तो वह जूते की निन्दा नहीं कर रहा है, केवल एक तथ्य की घोषणा कर रहा है कि जूता इस काम के लिए नहीं है, तुम गलत जगह उसका उपयोग कर रहे हो। इसमें निन्दा जरा भी नहीं है। तो कबीर साहब ने निन्दा नहीं की है लेकिन सुनने वाले समझे कि कबीर निन्दा कर रहे हैं। और जब ऋषियों ने कहा कि 'अहम् ब्रह्मास्मि', तो याद रखना यहाँ अहम् का मतलब वह अहम् नहीं, जो सामान्यतः हम समझते हैं। यहाँ अहम् का अर्थ ब्रह्म से ही है। अहम् और ब्रह्म जहाँ एक हो गए, उपनिषद् के ऋषि 'अहम् ब्रह्मास्मि' कहकर उस अद्वैत अवस्था की घोषणा कर रहे हैं।

जब कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से कि छोड़ सारे धर्म और मेरी शरण में आ 'सर्व धर्मयान् परित्यज मामेकम् शरणं व्रज' तो वे अपने अहंकार को मण्डित नहीं कर रहे हैं। उनका अहम् यहाँ पर परमात्मा का ही अहम् है। कृष्ण के भीतर से परमात्मा बोल रहा है। यह वह कृष्ण नहीं है जो अर्जुन का सारथी है, जो रथ की साफ-सफाई करता है, धूल झटकारता है, घोड़ों की देखभाल करता है, उन्हें दाना-पानी, घास, चना देता है। कृष्ण घोड़ों की लीद भी साफ करते होंगे, सारथि के रूप में घोड़ों को नहलाते होंगे। यह वह कृष्ण नहीं हैं जो कह रहे हैं 'मामेकम् शरणं व्रज'। जब यह वचन कह रहे हैं गीता में, तो उस समय कृष्ण अपने केन्द्र से बोल रहे हैं। वे परमात्मा की अवस्था में स्थित होकर कह रहे हैं कि हे अर्जुन, छोड़ सारी चिन्ता-फ़िकर, छोड़ सारे धर्मों को, तू मुझ एक की शरण में आ। मुझ एक... वह केन्द्र एक ही है। वह अलग-अलग नहीं है, वह एक सबके भीतर एक ही है, उसमें कोई भेद नहीं है। हमारी परिधियाँ अलग-अलग हैं। मेरे आँगन की परिधि अलग हो सकती है, आपके आंगन का बाउण्ड्री वॉल अलग हो सकता है। किसी का आँगन चौकोर हो सकता है, किसी का गोल, किसी का त्रिकोण, बहुत रंग-रूप, आँगन के भीतर अलग-अलग वृक्षों वाले बगीचे हो सकते हैं। लेकिन वह जो आकाश मेरे आँगन में है और आपके आँगन में और मेरे पड़ोसी के आँगन में है, वह भिन्न-भिन्न नहीं है। आकाश तो एक ही है। आँगन हम किसे कहते हैं?

क्या केवल वह बाउण्ड्री ही आँगन है, वह जो दीवार खड़ी है छोटी–सी? अगर आकाश न होता उसके भीतर तब वह बाउण्ड्री भी किसी काम की न थी। तो बाउण्ड्री की भी निन्दा नहीं, लेकिन याद रखना उसके भीतर और कुछ भी है, उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण। वह जो अण्डे की कवच है उस खोल के भीतर उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण कुछ छिपा हुआ है। उसी को बचाने के लिए वह अण्डे की खोल है। उससे भी ज्यादा जीवंत कुछ भीतर मौजूद है, उसे मत भूल जाना। लेकिन जब ऐसा कहते हैं तो सुनने वाले समझते हैं कि अहंकार की, परिधि की निन्दा हो गई। नहीं, निन्दा नहीं हो रही है।

स्वामी आनन्द भारती, तीन प्रकार का 'मैं' हो सकता है। एक 'मैं' हुआ देह अथवा मन के बारे में, दूसरा 'मैं' हुआ साक्षी चेतना के बारे में। जब तुम ध्यान में डूबते हो तब भी तुम जानते हो कि तुम हो, यद्यपि तुम्हारा होना देह और मन से भिन्न है। वह जो साक्षी का अनुभव है, उसे क्या कहोगे? कहना तो 'मैं' ही पड़ेगा। भाषा बड़ी कमजोर है। थोड़े से शब्द हैं, उन्हीं से काम चलाना होगा। काश! ज्ञानियों ने कोई भाषा बनाई होती। उन्होंने तो कोई भाषा बनाई नहीं। ज्ञानी तो भाषा के पार, शब्दों के पार, विचारों के पार चले जाते हैं। अज्ञानियों की भाषा है, उसका ही उपयोग करना पड़ेगा। तो कबीर को कहना पड़ेगा कि 'मैं' से दूर हटो।

कृष्ण कह रहे हैं 'मामेकम् शरणं व्रज' मुझ एक की शरण में आ। मन्सूर कह रहा है 'अनलहक', मैं ही सत्य हूँ। 'मैं' के बहुत अर्थ हो सकते हैं, लेकिन मेरी दृष्टि में कोई भी निन्दनीय नहीं है; चाहे वह परिधि वाला 'मैं' हो, चाहे वह केन्द्रीय 'मैं' हो, चाहे वह परमात्मा वाला 'मैं' हो, चाहे वह पदार्थ वाला 'मैं' हो। ओशो की इस धारा में 'जोरबा दि बुद्धा' की संपूर्ण स्वीकृति है। भौतिकवाद से लेकर अध्यात्मवाद तक इस पूरी रेंज, इस पूरे इन्द्रधनुष को हम कवर करते हैं और इसमें कुछ भी आलोचना जैसा नहीं है, कुछ भी निन्दनीय नहीं है; शरीर भी नहीं, मन भी नहीं, व्यक्तित्व भी नहीं।

एक दूसरा उदाहरण कहूँ तो उससे बात शायद और साफ हो सके। जैसे हम देखते हैं एक कुआँ है। कुएँ में कई हिस्से हैं– एक तो कुएँ के ऊपर की पाट है। हर कुएँ की पाट अलग–अलग हो सकती है, कहीं संगमरमर की बनी हो, कहीं सीमेंट–कंक्रीट की बनी हो, कहीं कच्ची मिट्टी की बनी हो, कहीं लाल पत्थरों से बनी हो। अलग–अलग रंगों की, अलग–अलग साईज की पाट हो सकती है। अलग–अलग आकार, गोल, चौकोर, त्रिकोणाकार हो सकते हैं, उनके रूप भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। लेकिन अगर हम कुएँ के भीतर जायें तो हम क्या पाते हैं? कुएँ के भीतर हम पाते हैं जल, और जल तो करीब–करीब एक सा है सब कुओं में। हाँ, छोटे–मोटे फर्क हैं। वे फर्क ऐसे हैं कि किसी कुएँ के पानी में कैलशियम ज्यादा है, किसी कुएँ का पानी मीठा

है, किसी कुएँ का पानी खारा है, कहीं पर शीतल जल है और कहीं गर्म पानी के झरने हैं कुएँ में। बहुत माइनर डिफ्रेन्सेज़, थोड़े सूक्ष्म अन्तर संभव हैं पानी में।

...लेकिन अगर हम और गहरे चलें कि यह पानी कहाँ से आता है? जिसे मैं मेरे कुँए का पानी कह रहा हूँ, क्या वह वाकई मेरे कुएँ का पानी है? और गहरे अगर हम चलें तो हम पाते हैं कि कुएँ के नीचे एक अण्डरग्राउन्ड वॉटर टेबल, एक भूमिगत जल भण्डार है और वह भूमिगत जल भण्डार एक ही है। मेरे कुएँ में भी उसी से पानी आता है, मेरे पड़ोसी के कुएँ में भी उसी से पानी आता है और गाँव के सब कुओं से भी वही पानी प्रगट होता है। भूमिगत जल भण्डार एक ही है। सारी जमीन के नीचे एक विशाल भण्डार है पानी का।

तो कुआँ हम किसे कहते हैं? क्या हम उस बाहर की पाट को कुआँ कहते हैं? उस अकेले को तो कुआँ कहने का कोई लाभ नहीं। अगर पानी न हो तो वह कैसा कुआँ? सिर्फ गड्ढा ही होगा, वह कुआँ नहीं कहलायेगा। क्या सिर्फ पानी को हम कुआँ कहते हैं? अगर यह ऊपर की पाट न हो, दीवार न हो, पानी के डबरे को तो हम कुआँ नहीं कह सकते। सिर्फ पानी कहीं भरा हो, उसे हम सरोवर कहेंगे, तालाब कहेंगे, कुआँ तो नहीं कह सकते। किसे हम कुआँ कहते हैं? अन्डरग्राउन्ड वॉटर टेबल को हम कुआँ कहते हैं? इसको भी हम कुआँ नहीं कह सकते। कुआँ एक संयोग है, जिसमें भूमिगत जल-भंडार, जमीन में खोदे गए एक खिड़की रूपी छेद के माध्यम से प्रगट हो रहा है। पड़ोस के एक दूसरे आदमी ने कुआँ खोदा, एक दूसरी खिड़की उसने खोली है, उस खिड़की से भी वही आकाश झांक रहा है जो आकाश मेरे घर की खिड़की से झांक रहा है। अर्थात् कुआँ संयोग है इन तीन बातों का।

ठीक ऐसे ही हमारे भीतर आत्मा है, उसके केन्द्र में परमात्मा है और आत्मा का सबसे बाहरी रूप मन और तन है। यह हमारे कुएँ की पाट है। आत्मा भीतर का जल है और परमात्मा? परमात्मा यानी परम-आत्मा, दि अल्टीमेट स्टेट ऑफ कॉन्शसनेस। जैसे अणु के भीतर छुपा है परमाणु, ठीक वैसे ही आत्मा के भीतर परमात्मा है। परमात्मा से यह अर्थ नहीं है कि सात आसमानों के पार कहीं कोई बैठा है जो दुनिया को चला रहा है, जिसने दुनिया को बनाया। नहीं, ऐसा कहीं कोई ईश्वर नहीं है। परमात्मा का अर्थ है- आत्मा का परम रूप। यह तो इसके शाब्दिक अर्थ से ही स्पष्ट है परम-आत्मा, चैतन्यों का चैतन्य। वह जो सार-सूत्र सारी चेतनाओं में है, सब कुओं में जो जल है वह जल, वह एक ही है। कृष्ण जब कहते हैं 'मामेकम् शरणं व्रज', मुझ एक की शरण में आ, तो वे उस भूमिगत जल भण्डार, चेतना के उस महासागर की बात कर रहे हैं, परमात्मा की बात कर रहे हैं। तो 'मैं' के अलग-अलग अर्थ हो गए।

एक है परिधि वाला 'मैं', दूसरा है केन्द्रीय 'मैं'और तीसरा है मध्य वाला 'मैं'; एक है पाट वाला 'मैं', एक कुएं के निजी पानी वाला 'मैं' और एक भूमिगत जल भण्डार वाला विराट 'मैं'। लेकिन इसमें से कोई भी निन्दनीय नहीं है।

मैं आपकी दृष्टि इस बात पर फोकस करना चाहता हूँ कि इनमें से कुछ भी तिरस्कार योग्य नहीं है। अगर यह पाट न होता कुएँ का, अगर यह दीवार न होती, तब यह कुआँ भी न होता। यह परिधि भी जरूरी है जल के प्रकट होने के लिए। साधना सिर्फ इतनी करनी है कि परिधि से केन्द्र की तरफ हम चलें, केवल परिधि पर अटक न जायें। अटकना जरूर खराब है, अटकना निन्दनीय है। उसकी निन्दा की जानी चाहिए। कहीं अटको मत, चलो 'चरैवेति चरैवेति'। तो अहंकार निन्दनीय नहीं है, अहंकार पर अटकना मत, बस इतना ख्याल रखना कि ओकार तक पहुंच जाओ।।

एक कथा याद आती है भिक्षु नागसेन की, शायद आपने सुनी होगी। बड़ा प्रसिद्ध भिक्षु हुआ नागसेन। सम्राट मिलिन्द के पास खबरें पहुँचने लगीं कि बहुत अद्भुत ज्ञानी है नागसेन। मिलिन्द ने सोचा कि दरबार में बुलाकर उसे सम्मानित किया जाये और अपने दरबार की शोभा बढ़ाने के लिए विद्वानों के संग उसे बिठाया जाये। उसने खबर भेजी नागसेन के पास, मंत्री गए। नागसेन एक नदी के किनारे बैठा हुआ था। मंत्रियों ने कहा कि सम्राट ने आपको बुलाया है। आप चलें, आपका स्वागत करेंगे और आपको दरबार में स्थान देंगे। नागसेन ने कहा कि सम्राट ने बुलाया है तो मैं आ जरूर जाऊँगा, लेकिन एक बात ठीक से जान लो कि नागसेन जैसा कोई व्यक्ति कहीं है नहीं। वे जो मंत्री आमन्त्रित करने आये थे बहुत हैरान हुए कि नागसेन जैसा कोई व्यक्ति है नहीं, और फिर भी यह कह रहे हैं कि मैं आने के लिए तैयार हूँ। बड़ी अजीब–सी बात लगी।

उन्होंने जाकर सम्राट से कहा। सम्राट भी थोड़ा चौंका, परेशान हुआ कि यह आदमी है कैसा, कहता है कि नागसेन नाम का कोई भिक्षु है नहीं! लेकिन फिर भी राजा ने बुलाया है, आने के लिए राजी हूँ, उसमें कोई दिक्कत नहीं। राजा ने कहा कि ऐसे व्यक्ति से तो मिलना चाहिए। बड़ी अद्भुत, अजीब–सी बात कह रहा है। नागसेन को रथ में बैठाकर ससम्मान लाया गया। महल के बाहर स्वयं सम्राट उसका स्वागत करने के लिए हाजिर हुआ। फूल मालाएँ पहनाईं और कहा कि भिक्षु नागसेन, सम्राट मिलिन्द आपका स्वागत करता है, मेरे प्रणाम स्वीकारें।

नागसेन ने कहा कि सम्राट मिलिन्द, भिक्षु नागसेन नाम का तो कोई व्यक्ति है नहीं, फिर भी तुम्हारे फूल, तुम्हारे स्वागत और तुम्हारे प्रणाम स्वीकारता हूँ। मिलिन्द ने कहा कि यह बात तो कुछ समझ में नहीं आई। पहले भी मैंने सुना था कि आप कुछ

अजीब सी बातें करते हैं। जब भिक्षु नागसेन है ही नहीं, तो कौन यह फूल–माला स्वीकार कर रहा है? नागसेन ने कहा कि उदाहरण से समझाऊँ, किसी स्थूल उदाहरण से, तो तुम शायद बात को पकड़ लो। जिस रथ पर मैं सवार होकर आया, इस रथ को देखते हो?

मिलिन्द ने कहा कि हाँ, निश्चित ही, मेरे सामने रथ दिखाई पड़ रहा है। नागसेन ने कहा कि इसके घोड़ों को बाहर निकालो। राजा ने आज्ञा दी अपने सारथी को कि घोड़ों को बाहर निकाला जाये। घोड़े अलग कर दिये गए। नागसेन ने पूछा कि क्या ये घोड़े रथ हैं? मिलिन्द ने कहा, नहीं, घोड़े कैसे रथ होंगे। घोड़े तो सिर्फ घोड़े हैं, जानवर हैं, वे तो रथ नहीं हैं। तब भिक्षु ने कहा कि ठीक, इन घोड़ों को यहाँ से अलग करो, ये तो रथ नहीं हैं। फिर उसने कहा कि घोड़े के पीछे जो लकड़ी का खांचा लगा हुआ है, जिसमें घोड़े बाँधे जाते हैं, उसको बाहर निकालो। उसने मिलिन्द से पूछा कि यह जो लकड़ी का स्ट्रक्चर है, क्या यह रथ है? मिलिन्द बोला कि नहीं, यह तो सिर्फ घोड़ों को बाँधने की तरकीब है। उसने कहा कि यह भी रथ नहीं है, इसको भी हटाओ यहाँ से, दूर करो। सारथी उसको भी उठाकर दूर ले गए। नागसेन ने कहा कि इसके पहिए बाहर निकालो। फिर पूछा कि क्या ये पहिए रथ हैं? पहिए बाहर निकाले गए। मिलिन्द ने कहा कि नहीं, ये तो रथ नहीं हैं। फिर बैठने की सीट हटाई गई, गद्दी हटाई गई। फिर पूछा कि यह क्या है? उसने कहा कि यह तो सीट है। नागसेन ने कहा कि क्या यही रथ है? मिलिन्द ने कहा कि यह तो बैठने की गद्दी है, यह कैसे रथ हो सकती है। उसने कहा कि हटाओ इसे भी।

इस तरह एक–एक करके सारी चीजें हटा दी गईं पीछे कुछ भी शेष न बचा। नागसेन ने कहा कि सम्राट मिलिन्द, बताओ रथ कहाँ है फिर? मैंने सारी चीजें अलग कर लीं, तुमने कहा कि यह भी रथ नहीं है, यह भी रथ नहीं है, 'नेति–नेति'। फिर रथ है कहाँ? तुम कह रहे थे कि मैं रथ पर सवार होकर आया हूँ। तब मिलिन्द ने कहा कि रथ कोई अलग वस्तु नहीं है। रथ तो इन सब वस्तुओं के संयोग का नाम है। नागसेन मुस्कराने लगा, उसने कहा कि ठीक तुमने बात पकड़ी, ठीक इसी प्रकार मैंने अपने भीतर जाकर देखा और पाया कि भिक्षु नागसेन जैसा कोई भी वहाँ नहीं है। हाँ, सबसे बाहर भोजन से निर्मित एक शरीर है, उसके भीतर देखता हूँ तो एक मन है– विचारों का संग्रह, स्मृतियों का भंडार। मेरे सारे अतीत के अनुभव वहाँ संग्रहीत हैं। और भीतर जाता हूँ तो मेरे हृदय में भावनायें हैं, आती हैं, जाती हैं, बदलती रहती हैं। और उसके भी अंदर जाता हूँ वहाँ एक साक्षी चैतन्य है। और उसके भी अंदर पाता हूँ कि वहाँ गूँज रहा है ब्रह्म का नाद, वहाँ फैला हुआ है परमात्मा का प्रकाश। इन सब चीजों

का संयोग, उसे आप भिक्षु नागसेन के नाम से पुकारते हैं, लेकिन भिक्षु नागसेन जैसी कोई वस्तु कहीं नहीं है। एक शरीर है पदार्थ का बना हुआ, मिट्टी का बना हुआ, अन्नमय कोष, वह मैं नहीं हूँ। मन है स्मृतियों का भण्डार, वह भी मैं नहीं हूँ। वह बायो–कम्प्यूटर है मनोमय कोष, जहाँ सारी सूचनाएँ इकट्ठी हैं। और उसके भीतर आत्मा है, वह भी मैं नहीं हूँ। वह तो बस चैतन्य है, उसमें नागसेन की कहीं सील–मोहर नहीं लगी हुई है कि यह नागसेन की आत्मा है। उसके और भीतर जाता हूँ, जब से परमात्मा को जाना है, तब से तो बिल्कुल ही यह स्पष्ट हो गया है कि वह विज्ञानमय कोष रूपी आत्मा भी भ्रम थी। जो मैं सोच रहा था कि मेरा जल, मेरे कुएँ का जल, वह भी मेरा भ्रम था। मेरे कुएँ का जल जैसी कोई चीज नहीं है।

एक विराट जल भण्डार है– आनंदमय कोष, बस वही परम सत्य है। हाँ, एक छोटे–से कुएँ में से झांका था तो लगता था कि मेरा जल, मेरे कुएँ का पानी, अब मैं जानता हूँ कि मेरे कुएँ के पानी जैसी कोई चीज कहीं नहीं है। पाट है, पानी है, विशाल जल भण्डार है, लेकिन इसे क्या नाम दिया जाये? नाम एक कामचलाऊ औपचारिकता है, तुम पुकार सकते हो भिक्षु नागसेन। लेकिन भली–भाँति जानो, ऐसा कोई है नहीं। और तुम अपने भीतर जाओगे सम्राट मिलिन्द, तुम भी कहीं नहीं पाओगे सम्राट मिलिन्द को। यह कामचलाऊ नाम है। कुछ न कुछ तो पुकारना होगा, तो चलो क, ख, ग, कुछ भी चलेगा। लेकिन, ऐसा कोई है नहीं, सिर्फ संयोग मात्र है बहुत–सी चीजों का, प्रक्रियाओं का, घटनाओं का।

जिसे हम कहते हैं 'मैं', अहंकार, तो हम किसे अहंकार कहते हैं? किसी एक वस्तु को अहंकार नहीं कह सकते। और जब हम कहते हैं 'अहम्', 'मैं', उसके बहुत–बहुत अर्थ हैं। ओशो की किताब 'ध्यानयोग : प्रथम एवं अन्तिम मुक्ति' में एक बड़ा अद्‍भुत ध्यान का प्रयोग है। ओशो कहते हैं कि भाव करो कि 'मैं हूँ', सदा–सदा स्मरण रखो कि 'मैं हूँ'। सेल्फ रिमेम्बरेंस' पर जॉर्ज गुरजिएफ भी बहुत जोर दिया करता था– 'आत्म स्मरण'। गौतम बुद्ध जिसे कहते हैं 'सम्मासति'– सम्यक्स्मृति, राईट–माइन्डफुलनेस, स्वयं के होने के बोध से हमेशा भरे रहो। इसे क्या कहोगे स्वयं के होने का बोध? यह सबसे सरल ध्यान है। ओशो ने जितनी भी विधियाँ दी हैं 'मेडिटेशन : दि फर्स्ट एण्ड लास्ट फ्रीडम में' उनमें सर्वाधिक सरल विधि है– स्मरण रखो कि मैं हूँ। लेकिन मजे की बात है कि ओशो के सारे संन्यासियों को ढेर सारी विधियाँ याद होंगी, यह विधि शायद किसी को याद नहीं होगी और यही सर्वाधिक कारगर विधि है, और अन्य सारी विधियों में भी सार–सूत्र यही है। ओशो के अंतिम प्रवचन का अंतिम शब्द है– 'सम्मासति'– सम्यक्स्मृति, राईट–माइन्डफुलनेस; जैसे

ही तुम 'मैं हूँ' का भाव करते हो, इस स्मरण से भरते हो, तुम ध्यानस्थ हो जाते हो। यह अद्भुत कीमिया है।

चलते हुए भाव रखो कि मैं चल रहा हूँ, भोजन का स्वाद लेते हुए स्मरण रखो कि मैं स्वाद ले रहा हूँ, शान्त बैठे हुए, कुछ न करते हुए स्मरण रखो कि मैं खाली बैठा हूँ; 'मैं हूँ' यह सूत्र बना रहे। गाँव में बड़े बुजुर्ग कहते हैं अपने बच्चों से जो बाहर शहर में किसी काम से जा रहे हैं कि बेटा, अपना ख्याल रखना। हम सोचते हैं कि साधारण–सी बात है, टेक केयर ऑफ योरसेल्फ। नहीं, इतनी सी बात नहीं है। इसमें अध्यात्म का बहुत गहरा सूत्र छिपा है। जब कहते हैं कि अपना ख्याल रखना, बाहर शहर में जा रहे हो, संसार के चकाचौंध में जा रहे हो तो भूल मत जाना स्वयं को, अपना स्मरण रखना, यानी सेल्फ रिमेम्बरेंस। यही तो ध्यान का सूत्र है– अपना ख्याल रखना। कुछ भी करते हुए अगर हम अपना ख्याल रख सकें तो वही घटना ध्यान बन जायेगी।

हम जिसे कहते हैं अहंकार उसकी निन्दा छोड़ो, क्योंकि इस अहम् की निन्दा से इसको मिटाने के उपाय हम करने लगते हैं और यह मिटता नहीं। न तो परिधि का 'मैं' मिट सकता है, माटी की काया जिन तत्वों से निर्मित है, वे अविनाशी हैं। न मन मिटता है, वही तो बारंबार पुनर्जन्म लेता है। और यह भीतर का 'मैं' तो मिटेगा कैसे, यह साक्षी वाला 'मैं' तो शाश्वत है। कृष्ण तो कहते हैं कि न तो उसे अग्नि जला सकती है, न शस्त्र छेद सकते हैं। तो साक्षी आत्मा को कैसे नष्ट करोगे? और परमात्मा को तो कैसे नष्ट करोगे? बाहर की परिधि को भी नष्ट नहीं किया जा सकता, केन्द्र की तो बात छोड़ो। तो यह तो सवाल ही मत पूछो कि कैसे इस 'मैं' को नष्ट करें। सिर्फ समझो, जानो, पहचानो कि कहाँ–क्या है, कहाँ किस चीज की उपयोगिता है? बस इतना ही करो कि गलत चीज को उस जगह मत ले जाओ जहाँ उसका कोई उपयोग नहीं है। सम्यक्जगह पर हर चीज का सदुपयोग है। प्रकृति ने अहंकार दिया है तो उसका भी उपयोग है।

इस कन्टेनर के भीतर, जिसे हम शरीर और मन कहते हैं, इसी के भीतर आत्मा प्रगट हुई है, उसी के केन्द्र में परमात्मा गूँज रहा है। इस शरीर के बिना, इस मन के बिना यह चैतन्य भी प्रगट नहीं हो सकता था। इस रूप और आकार में ही वह अरूप व निराकार परमात्मा अभिव्यक्त हुआ है। इस कन्टेनर की भी तुम कैसे निन्दा करोगे? परमात्मा ने जिसे चुना है अपने होने के लिए, उसकी कैसे निन्दा की जा सकती है? नहीं, किन्हीं सन्तों ने निन्दा नहीं की है। जिन्होंने निन्दा की है, वे सन्त ही नहीं रहे होंगे। लेकिन हमने समझने में भूल जरूर की है।

सवाल सिर्फ इतना है कि तुम परिधि से केन्द्र तक आना–जाना सीखो। परिधि भी तुम्हारी है, केन्द्र भी तुम्हारा है और यह पूरा मार्ग, इसमें जो–जो भी पड़ता है बीच रास्ते में, वह सब भी तुम हो, वह सब भी तुम्हारा है। इस भाव से भरो। तब तुम्हारे भीतर आत्मग्लानि समाप्त हो जायेगी। 'मैं' को नष्ट करने की जो दुष्टता है, वह हिंसक वृत्ति समाप्त हो जाएगी। अतीत में अहंकार को नष्ट करने के लिए जो लोग उत्सुक हुए वे स्वयं ही महाअहंकारी थे। और कौन उत्सुक होगा? अहंकार को नष्ट करने में अहंकारी लोग उत्सुक हुए। धर्म एक प्रकार के रुग्ण लोगों से भर गया। नहीं, तुम आनन्द मनाओ, तुम जो हो, जैसे हो, उसका उत्सव मनाओ। चंडीदास की भाषा में ओशो का सूत्र है– 'उत्सव आमार जाति आनन्द आमार गोत्र।'

छोड़ो निन्दा, कन्टेनर और कन्टेन्ट ये दोनों ही सार्थक हैं। बिना कन्टेनर के कन्टेन्ट्स नहीं हो सकते थे और बिना कन्टेन्ट्स के कन्टेनर भी नहीं हो सकता था। शरीर और मन में परमात्मा प्रगट हुआ है इसलिए वह भी निंदनीय नहीं है। उसे भी सुन्दर जरूर बनाओ। अहंकार की कुरूपता को मैं जरूर मिटाने के लिए कहूँगा। अपने व्यक्तित्व को भी सुन्दर बनाओ। व्यक्तित्व को क्यों खराब बनाना है। जिस थाली में हम भोजन कर रहे हैं, भोजन तो स्वादिष्ट हो ही, थाली भी सुन्दर हो तो क्या कहना! शरीर और मन को सुन्दर बनाओ। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' तुम्हारा जीवन–सूत्र बने; मिटाने की बात छोड़ो, वह हिंसक वृत्ति का सूक्ष्म रूप ही है।

हरि ओम् तत्सत्!

अहं ब्रह्मास्मि!!

तत्वमसि!!!

प्रवचन—8

माया—मोह से मुक्ति

प्रश्नसार—

1. समाधि से ज्यादा सुमिरन पर जोर

2. मूर्च्छा और जागरण की डिग्रियां 3. ज्ञान व भक्ति मार्ग में भेद

4. विराट से मोह लगाओ

5. भक्तिः बिना साधना के सिद्धि

समाधि से ज्यादा सुमिरन पर जोर

प्रश्न–1: मेरा घर, मेरे गहने, मेरे पति, मेरे बच्चे यह भाव समाधि की गहराइयों के साथ क्रमशः कम होता जा रहा है। क्या यह संबोधि के बाद शून्य हो जायेगा अथवा बाद में भी कायम रहेगा? पूछा है मा आत्म पूजा ने।

एक छोटे से उदाहरण से समझाऊँ तो बात ख्याल में आ जायेगी। जैसे एक लड़की की शादी होती है और वह अपने ससुराल जाती है; जब नई–नई ससुराल में पहुँचती है, उसे यह नहीं लगता कि यह घर मेरा घर है। यह देवर, यह देवरानी, यह जेठ, यह जेठानी, यह सास, यह ससुर, ये मेरे हैं, यह उसे एकदम से ख्याल नहीं आता। रात को उसे सपने भी आयेंगे तो अपने घर के, मायके वाले घर के सपने आयेंगे, अपने माता–पिता, भाई–बहन के स्वप्न आयेंगे। उसका 'मैं' वहाँ से जुड़ा हुआ था, पच्चीस साल से जुड़ा हुआ था। आज वह शादी होकर अपने ससुराल पहुँच गई है। वे पच्चीस साल की स्मृतियाँ पीछा नहीं छोड़ेंगी। उसका तादात्म्य, उसका आइडेंटिफिकेशन उस घर से है, मायके वाले घर से, अभी ससुराल से नहीं हुआ। लेकिन क्रमशः धीरे–धीरे कुछ महीनों के भीतर उसका तादात्म्य परिवर्तित होगा। उसे लगेगा कि मेरे मायके वाला घर मेरे भाई–भाभी का है। वह मेरा घर नहीं है, मेरा घर तो यह है, ससुराल। एक नया आइडेंटिफिकेशन बनना शुरू होगा।

जब तुम ध्यान से समाधि में प्रवेश करते हो ठीक यही घटना घटती है। बाहर की परिधि वाले 'मैं' से तुम भीतर के केन्द्र वाले 'मैं' की तरफ खिसकते हो। तो मेरा घर, मेरे गहने, मेरे पति, मेरे बच्चे, ये भाव, समाधि की गहराइयों के साथ क्रमशः कम होते चले जाते हैं। अब तुम्हारा 'मैं' कहीं और जुड़ा। मैं नाद हूँ, मैं प्रकाश हूँ, मैं पवित्र सुगन्ध हूँ, मैं प्रेम–स्वरूप हूँ, मैं सच्चिदानन्द हूँ– वहाँ भाव जुड़ना शुरू हुआ। लेकिन यह घटना धीरे–धीरे घटती है... क्रमशः। बार–बार तुम वापस लौट लौटकर आ जाते हो अपने पुराने 'मैं' पर, परिधि पर। जैसे वह लड़की विवाह के बाद भी अपने मायके वापस आती है। फिर मायके में आ के भूल जाती है, वह ऐसे रहने लगती है उस घर में जैसे कि वह उसका ही घर हो। लेकिन ऐसा दो–चार–छः बार ही होता है। वह बार–बार मायके आती है, फिर अन्तराल भी लम्बे होने लगते हैं। ज्यादा ससुराल में व्यस्तता होने लगती है। उसका 'मैं' भाव फिर ससुराल के घर से, उस परिवार से जुड़ने लगता है, मायके वाले घर से धीरे–धीरे टूटने लगता है। लम्बे–लम्बे अन्तराल के बाद मेहमान की तरह वापस लौटती है। अब वह आती भी है तो उसे ऐसा नहीं लगता कि यह मेरा घर है। कुछ साल बाद जब वह अपने माता–पिता के घर आती है, उसे लगता है कि

यह मेरे भाई–भाभी का घर है, यह मेरे भतीजे का घर है। इसे वह मेरा घर अब नहीं कहतीं। तादात्म्य टूटने में समय लगता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि यह तादात्म्य पूर्णतः समाप्त ही हो गया। अभी भी मेरा मायका तो है, मेरे माता–पिता का घर तो है। प्रतिशत की भाषा में समझो, डिग्रीज में समझने की कोशिश करो।

समाधि की गहराइयों में माना कि परिधि से तादात्म्य क्षीण होता जायेगा, लेकिन फिर भी पूरा शून्य नहीं हो जायेगा। बार–बार लौटकर फिर परिधि पर आना होगा। मेरा शरीर, मेरा मन, मेरे विचार, मेरे भाव, मेरा मकान, यह भाव भी सूक्ष्म रूप में मौजूद रहेगा। लेकिन मुख्य एम्फैसिस बदल गई। मैं ब्रह्म हूँ, मैं ओंकार का नाद हूँ, मैं दिव्य प्रकाश हूँ, एम्फैसिस उस पर हो गई। तो प्रतिशत की भाषा में सोचो। सामान्यतः हम सोचते हैं कि या तो यह या वह। नहीं, जीवन में ऐसा स्पष्ट बंटवारा कहीं नहीं है।

जीवन में मामला जटिल है, हम गणित का साफ–सुथरा फॉर्मूला बनाना चाहते हैं, जबकि सब चीजों में कुहासे जैसी रहस्यमय परसेंटेज है। हम सीधा–सीधा बाँटना चाहते हैं, अन्धेरा और उजाला। मुझे बताओ तुम किसे अन्धेरा कहोगे किसे उजाला कहोगे? जिसे हम प्रकाश कहते हैं उसका अर्थ है थोड़ा कम अन्धेरा; और जिसे हम अंधेरा कहते हैं उसका मतलब है थोड़ा कम प्रकाश। इन दोनों में क्वॉन्टिटी का भेद है क्वॉलिटी का नहीं, क्वॉलिटी तो वही है। मात्रा का भेद है, गुण का नहीं। इस बात को खूब गहरे प्रवेश करने देना कि जिस अहंकार से 'मैं और मेरे' का तादात्म्य था, वह तादात्म्य परिधि वाला क्रमशः कम होता जा रहा है।

आप पूछती हैं कि क्या वह संबोधि के बाद शून्य हो जायेगा अथवा वह बाद में भी कायम रहेगा? संबोधि के बाद भी तुम चौबीसों घंटे तो केन्द्र पर नहीं रह सकोगी, परमात्मा ने वैसी व्यवस्था जीवन की बनाई नहीं– 'एस धम्मो सनन्तनो'। तुम्हें डोलना होगा परिधि और केन्द्र के बीच। कभी–कभी परिधि पर आओगी, तब तुम कहोगी 'मैं', तो तुम्हारा अर्थ वहाँ शरीर और मन से होगा, जब तुम समाधि की गहराइयों में होगी तब तुम कहोगी 'मैं', वहाँ तुम्हारा अर्थ परमात्मा से होगा। जब तुम मध्य में होओगी तब तुम कहोगी 'मैं', उसका अर्थ तुम्हारी साक्षी चेतना से होगा। संबोधि के बाद भी यह आवागमन चलेगा, परिधि और केन्द्र के बीच। कोई बुद्ध पुरुष चौबीसों घंटे समाधि में नहीं डूबे रहते। वे भी बाहर आते हैं जगत में, कर्म करते हैं, भोजन करते हैं, बातचीत करते हैं, मन का उपयोग करते हैं। मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ, कैसे दे रहा हूँ? अपने मन का उपयोग करके। यह भाषा चेतना से तो नहीं आ रही है। यह तो मैंने जो भाषा सीखी थी, मेरे मन में जो संग्रहित है पुराना भंडार स्मृति का, उसका

उपयोग कर रहा हूँ। मैं हाथ हिला रहा हूँ, मुँह चला रहा हूँ, शरीर का उपयोग हो रहा है। तो बुद्ध पुरुष भी चौबीसों घंटे ब्रह्म में तो नहीं डूबे होते। हाँ, ब्रह्म का स्मरण जरूर रखते हैं। परिधि पर आकर भी परमात्मा का स्मरण, जिसको हरि–सुमिरन कहते हैं।

सभी सन्तों ने सुमिरन पर बहुत जोर दिया है। समाधि पर उतना जोर नहीं दिया, समाधि से भी ज्यादा सुमिरन पर जोर दिया है। समाधि में तुमने जिसे पहचाना, परमात्मा के प्रकाश रूप को, कि परमात्मा के संगीतमय रूप को, अब उसका स्मरण रखो। समाधि से भी ज्यादा मूल्यवान है यह बात– सुमिरन– 'सिमिर सिमिर सिमिर मन मेरे'। उसके स्मरण से भरो क्योंकि तुम्हें परिधि पर तो बार–बार आना होगा। चौबीसों घंटे तो कोई भी व्यक्ति अपने केन्द्र में नहीं डूबा रह सकता। जब परिधि पर जियोगे तब परमात्मा का स्मरण रखना, तुमने भीतर जिसे जाना, जिसे पहचाना, उसकी याद रखना।

मूर्च्छा और जागरण की डिग्रियां

प्रश्न–2: मोहभाव आदि समाप्त होने के बाद क्या बुद्ध पुरुष सदा शून्य दशा में जीते हैं?

बुद्ध पुरुष भी सदा शून्य में नहीं जियेगा, संबोधि के बाद भी परिवर्तन जारी रहेगा, प्रतिशत बदलता रहेगा, बदलाहट जीवंतता का लक्षण है। समझो कि पहले निन्यानवे प्रतिशत 'मैं' का अर्थ था व्यक्तित्व, पर्सनैलिटी, कुएँ की पाट। अब निन्यानवे प्रतिशत सुमिरन रहेगा परमात्मा का, अपने ब्रह्म भाव का, अपने स्वभाव का। एक प्रतिशत कभी–कभी परिधि पर आ जाएगा, कभी–कभी पुराने तादात्म्य से घिर जाएगा।

'कृष्ण मेरी दृष्टि में' नामक प्रवचनमाला में एक बड़ी प्यारी बात ओशो ने कही है– 'इतना सौभाग्यशाली कोई कृष्ण नहीं है जो चौबीस घंटे में किन्हीं क्षणों में मूर्च्छा के तल पर न आ जाता हो और ऐसा दुर्भाग्यशाली कोई भी मूर्च्छित व्यक्ति नहीं है, जो चौबीस घंटे में कुछ क्षणों के लिए कृष्ण जैसी चेतना पर न पहुँच जाता हो, बुद्ध जैसे चैतन्य के शिखर को न छू लेता हो, महावीर की ऊँचाइयों को न स्पर्श कर लेता हो।' इतना दुर्भाग्यशाली कोई व्यक्ति इस दुनिया में नहीं है। और इतना सौभाग्यशाली कोई बुद्ध भी नहीं है जो कभी–कभी कुछ क्षणों के लिए मूर्च्छा में न घिर जाता हो। एक रेंज है, एक इन्द्रधनुष जैसा है, उसमें सब रंग हैं। एम्फैसिस जरूर बदल जाती है।

बुद्ध पुरुष ज्यादा समय अपने जागृत स्वभाव में जीते हैं। कभी–कभी थोड़े से मूर्च्छित होते हैं। बुद्ध के जीवन की वह घटना तो सुनी है न– ओशो ने कई बार

प्रवचनों में कहा है कि बुद्ध जाते थे अपने शिष्य आनन्द से बातचीत करते हुए और उन्होंने माथे पर बैठी मक्खी को उड़ा दिया। फिर अचानक ठिठके, फिर से हाथ ऊपर ले गए और जो मक्खी वहाँ थी ही नहीं, उसको उड़ाया। आनन्द पूछने लगा कि भन्ते, आप यह क्या करते हैं? बुद्ध ने कहा कि आनन्द, मैं तुम्हारे साथ बात करने में व्यस्त हो गया था और मैंने बेहोशी में मक्खी को उड़ा दिया। अब मैं वैसे उड़ा रहा हूँ जैसे एक बुद्ध को उड़ाना चाहिए। इस कहानी से तो बिल्कुल स्पष्ट है कि बुद्ध भी उस क्षण में मूर्च्छित थे। नाममात्र को ही सही, बहुत कम, लेकिन फिर भी मूर्च्छित तो थे। बातचीत में खो गए थे, विचारों में उलझ गए थे। आनन्द से बातचीत करते समय मन के साथ तादात्म्य हो गया था।

याद रखना, सिर्फ प्रतिशत की बात है। कितना ही सोया हुआ आदमी हो, इतना ज्यादा नहीं सो जाता कि सौ प्रतिशत सो जाए और कितना ही जागा हुआ व्यक्ति हो, इतना नहीं जाग जाता कि सौ प्रतिशत जाग जाए। और यह बात तुम्हें बहुत आशा से भरेगी। तो सिर्फ प्रतिशत की ही बात है, सिर्फ क्वॉन्टिटी की बात है, क्वॉलिटेटिवली, गुणात्मक रूप से हम भी वही हैं जो बुद्ध हैं, जो महावीर हैं, जो कृष्ण हैं, जो पतंजलि हैं, सिर्फ थोड़ी–सी मात्रा का भेद है। उनमें जागरण की मात्रा बढ़ गई और हममें थोड़ी सी कम है। तब तो बात बदली जा सकती है, सरल लगती है।

मूर्च्छा और जागरण एक–दूसरे के विपरीत शब्द नहीं हैं। गर्मी की डिग्री जैसे हैं– जैसे पचास डिग्री गर्म पानी, चालीस डिग्री गर्म पानी और तीस डिग्री गर्म पानी, सिर्फ डिग्री का भेद है, है तो वही गर्मी। हम जिसे ठण्डा और गर्म कहते हैं, उसमें केवल मात्रा का भेद है, ऊष्मा की मात्रा भिन्न–भिन्न है। ठण्ड और गर्मी दो अलग–अलग बातें नहीं है, एक ही टेम्प्रेचर के, एक ही तापक्रम के विभिन्न सोपान हैं। ठीक ऐसे ही मूर्च्छा और जागरण हैं।

तो अहम् भाव और ब्रह्म भाव के बीच इस तालमेल को समझना। अतीत में इस बात पर ख्याल नहीं किया गया है और इसलिये परिधि की अत्यधिक निन्दा की गई है। बुद्धत्व के बाद भी यह कायम रहेगा। जब महर्षि रमण कहते हैं पूछो 'मैं कौन हूँ?' तो वे किस 'मैं' की बात कर रहे हैं? उस भीतर वाले 'मैं' की। निश्चित रूप से उसे जानना है, केवल परिधि पर अटक कर ही नहीं रह जाना है और विशेष रूप से ओशो की इस धारा में जहाँ 'जोरबा दि बुद्धा' की बात है, वहाँ तो पदार्थ और परमात्मा दोनों ही सम्मानित हैं, परिधि और केन्द्र दोनों। संबोधि के बाद भी परिधि और केन्द्र पर आवागमन चलता है।

ज्ञान व भक्ति में भेद

प्रश्न–3ः अहंकार की दृष्टि से ज्ञान व भक्ति मार्ग का भेद बताएँ।

स्वामी चन्द्रशेखर भारती, दोनों में बड़ा भेद है। भक्ति का मार्ग बहुत सरल है क्योंकि इसमें हम कन्टेनर को बदलने की कोशिश नहीं कर रहे, न ही हम कन्टेन्ट्स से लड़ रहे हैं। यह जो तन–मन रूपी पात्र है, कन्टेनर है, इसके भीतर जो तत्व हैं, जो कन्टेन्ट्स हैं, उन पर हम दृष्टि नहीं अटका रहे हैं और वहाँ से क्षुद्र को हटाने की जगह विराट को आमन्त्रित कर रहे हैं। वह जो विचारों से, स्मृतियों से, कल्पनाओं से, भावनाओं और वासनाओं से भरा हुआ चित्त था, उसे हम भर रहे हैं परमात्मा के ओंकार नाद से, उसके दिव्य प्रकाश से, उसकी पवित्र सुगन्ध से, उसके आनन्द रूप से, उसके प्रेम रूप से। विराट को आमन्त्रित कर रहे हैं। निश्चित रूप से जब विराट आएगा तो यह छोटा–सा पात्र उसे न संभाल पायेगा। कबीर ने कहा है– 'बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई'। पुरानी भाषा में कह सकते हैं कि अहंकार मिट जायेगा जब ओंकार रूपी परमात्मा अवतरित होगा।

ज्ञानी उल्टी कोशिश कर रहा है, वह कह रहा है कि हम अहंकार को शुद्ध करेंगे। हम इस कन्टेनर को शुद्ध करेंगे, कंटेन्ट्स को नष्ट करेंगे। ये जो कामनाएं एवं विचार हैं... मिटा देंगे विचारों को, खत्म कर देंगे भावनाओं को। महर्षि महेश योगी के एक ध्यान का नाम है 'भावातीत ध्यान' भावनाओं के पार, विचारों के पार, सबको नष्ट कर देंगे। कन्टेन्ट्स को शून्य कर देंगे। उस अमन की अवस्था में मुक्ति घटित होगी, ऐसा ज्ञानियों का मानना है। लेकिन आज तक ऐसा कोई कर नहीं पाया है। ज्ञान मार्ग केवल एक भ्रम है। लगता है कि यह मार्ग है, इसलिए मैं गिन ले रहा हूँ इसे मार्ग, अन्यथा यह मार्ग है नहीं।

स्वयं बुद्ध की कहानी तो तुमने सुनी ही होगी। थक गए छः साल तक तपस्या करते–करते। तब उन्होंने एक दिन तपस्या करनी भी छोड़ दी, और उस रात उन्हें बुद्धत्व घटा। झेन फकीर सदा–सदा से पूछते आए हैं ढाई हजार सालों से कि बुद्ध को ज्ञान कैसे घटा, साधना के द्वारा अथवा साधना को छोड़कर? निश्चित रूप से साधना को छोड़कर ही ज्ञान घटा, साधना करते हुए तो नहीं घटा। ज्ञानमार्ग, केवल लगता है कि वह साधना का मार्ग है। वस्तुतः वह मार्ग है ही नहीं। मार्ग तो एक ही है और वह है भक्ति का मार्ग। तुम अपने भीतर के विराट को देखो। तुम्हारे भीतर केवल विचार ही नहीं हैं, केवल बादल ही नहीं हैं, आकाश भी है। यह जो विचारों के बादल, भावनाओं की बदलियाँ तैर रही हैं, यह जिस आकाश में तैर रही हैं तुम उस आकाश पर नजर

गड़ाओ, क्षुद्र से दृष्टि को हटाओ। क्षुद्र से दुश्मनी नहीं, विराट से दोस्ती साधो। श्रेष्ठ को खोजो, निकृष्ट से ध्यान हटाओ। मैंने सुना है –

दो पुरफष अपनी खोई हुई पत्नियों को ढूँढ़ते हुए एक–दूसरे से मिलते हैं।

पहला दूसरे से पूछता है– तुम्हारी बीवी कैसी लगती है?

दूसरा कहता है– वो लंबी, गोरी, नीली आँखों वाली, उसकी फिगर 36–24–36 है। और तुम्हारी कैसी दिखती है?

पहला बोला– मेरी को छोड़ो, चलो तुम्हारी वाली को खोजते हैं।

छोड़ो निम्न की चिंता, उच्च को खोजो। भगवत्ता को खोजो। भक्त कोई साधना नहीं करता, वह केवल दृष्टि का परिवर्तन करता है। अपने गेस्टाल्ट को चेन्ज करता है। मत देखो विचारों को, मत देखो भावनाओं को, उनके पीछे देखो। क्या है उस पृष्ठभूमि में? तुम पाओगे कि वहाँ विराट आकाश है और वह विराट आकाश शून्य नहीं है, खाली नहीं है। वह प्रभु के संगीत से गूंज रहा है, अनहद का तूरा वहाँ बज रहा है, वहाँ प्रकाश ही प्रकाश छाया हुआ है। तुम उस पर नजर गड़ाओ। बजाय अपने मन से लड़ने के, बजाय इस कन्टेनर को नष्ट करने के, तुम इसके भीतर के उस प्यारे सुपर–कन्टेन्ट को, परम–तत्व को देखो। हाँ, माना कि कुछ कचरा–कूड़ा भी आ गया है इस कन्टेनर में, लेकिन उस पर नजर गड़ाना जरूरी तो नहीं।

मैंने सुना है दो आदमी.. उनमें एक कवि था, एक कबाड़ी, दोनों मित्र थे। दोनों टहल रहे थे रात को। एक तालाब के पास से गुजरे। कबाड़ी कहने लगा कि इस तालाब में नीचे देखकर ऐसा लगता है कि एक पुराना जूता और एक टूटा हुआ डिब्बा पानी में पड़ा है। तो कवि ने अपना माथा ठोक लिया। उसने कहा कि हद कर दी तुमने भी, बिल्कुल ही कबाड़ी हो। इस सुन्दर झील में, तालाब में चाँद उतर आया है, चाँदनी फैली हुई है, तुम्हें वह दिखाई नहीं पड़ती। तुम्हें वह पुराना जूता और टूटा हुआ डिब्बा दिखाई पड़ रहा है पानी में। चाँदनी का भी उपयोग तुमने किया तो टूटे सड़े हुए डिब्बे को देखने में किया। कबाड़ी की नजर!

भक्त आपसे कहना चाहते हैं कि हे ज्ञानियों, कबाड़ी बनना छोड़ो। तुम क्यों देखते हो विचारों को, क्यों भावनाओं में उलझते हो, क्यों चिन्ता करते हो कि मेरे अन्दर क्रोध है, कि लोभ है, कि मोह है। है तो है, रहने दो, कुछ और भी वहाँ है। वहाँ अनहद का संगीत गूँज रहा है, वहाँ दिव्य प्रकाश छाया हुआ है। तुम उसे क्यों नहीं देखते? वहाँ चाँदनी भी है, चाँद उतर आया है तुम्हारे इस छोटे–से कन्टेनर में। अद्भुत, यह कन्टेनर भी अद्भुत है! फिर तो कन्टेनर की भी निन्दा न कर सकोगे। कन्टेन्ट इतना प्यारा है, चाँद उतर आया है, परमात्मा तुम में छलक रहा है।

नहीं, भक्ति ही एकमात्र मार्ग है, ज्ञानमार्ग की साधना कोई साधना नहीं है। क्षुद्र से तादात्म्य तोड़ो– तुमने बना लिया है धन से, पद से, ज्ञान से, वस्तुओं से, सामान से, लोगों से। पुरुषों का तादात्म्य ज्यादा सूक्ष्म चीजों से है, स्त्रियों का तादात्म्य ज्यादा स्थूल चीजों से है। लेकिन दोनों अन्ततः क्षुद्र ही हैं, चाहे वे स्थूल देह, वस्त्र या आभूषण हों, चाहे सूक्ष्म विचार, धारणाएं, तर्क या फिलॉसफी हों। थोड़ा अपना तादात्म्य बदलो। विराट भी वहीं मौजूद है, ठीक वहीं मौजूद है। तुमने वह गेस्टाल्ट वाला चित्र देखा होगा– एक ही चित्र में बूढ़ी स्त्री और जवान स्त्री का चित्र है। लेकिन एक बार में तुम एक को ही देख सकते हो क्योंकि उन्हीं रेखाओं से दोनों चित्र बने हुए हैं। अगर क्षुद्र पर तुम्हारी नजर है तो तुम विराट से चूक जाओगे और यदि विराट पर नजर है तो क्षुद्र तुम्हें बाधा न देगा, वह ओझल हो जाएगा। तब क्षुद्र को तुम क्षुद्र भी न कह सकोगे।

आकाश में बादल तैर रहे हैं, बादलों से आकाश की शोभा है। अगर ये रंग–बिरंगे बादल न होते तो आकाश बड़ा सूना–सूना लगता। फिर तुम विचारों की भी निन्दा न करोगे। इस भीतर के चैतन्य के आकाश में तैरती हुई विचारों की बदलियाँ, ये भी बड़ी प्यारी हैं। ये न होतीं तो यह आकाश बड़ा खाली–खाली हो जाता। निन्दा की बात ही छूट जाएगी, सर्व–स्वीकार का भाव जागेगा। समर्पित हो जाओगे तुम; जैसा है, जो है, उसके साथ राजी हो जाओगे। यही भक्त की खूबी है। वह कोई साधना नहीं करता और उस परम को पा लेता है। और ज्ञानी, योगी, तांत्रिक, सांख्यविद, वेदांती, बेचारा साधना कर–करके थक जाता है, फिर भी उसे प्राप्त नहीं कर पाता। और जिन्होंने पाया है उस मार्ग से, उन्होंने थककर चकनाचूर होकर पाया है; जिस दिन उन्होंने साधना छोड़ दी, उस दिन पाया। लेकिन तब उन्होंने यह भी जाना कि साधना फिजूल ही की। बुद्ध को जिस दिन बुद्धत्व घटा, उस दिन उन्होंने यह भी जाना कि छः साल पहले भी यह घटना घट सकती थी; मैं फिजूल ही मेहनत करता रहा, व्यर्थ का परिश्रम करता रहा।

विराट से नाता जोड़ो। मीरा कहती है 'मेरे तो गिरिधर गोपाल'। देखते हो वह नहीं कहती कि मेरे भीतर विचार हैं कि मेरे भीतर दुर्भावनाएँ हैं। वह कहती है 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' मेरे भीतर कृष्ण बाँसुरी बजा रहे हैं अनहद की, मैं उनकी प्रेमिका। कहती है 'श्याम मने चाकर राखो जी'। हे घनश्याम! मुझे अपना नौकर रख लो। मेरी परिधि केन्द्र की सेविका बन जाये। यह हुई भक्त की बात। यहाँ घनश्याम से तात्पर्य घन जैसे आंतरिक श्यामल आलोक से है। कृष्ण की बाँसुरी काव्यात्मक प्रतीक है अनाहत नाद की, और उनका सांवला रंग प्रतीक है अंतस–आलोक का।

रैदास कहते हैं 'प्रभु जी, तुम चन्दन हम पानी'। हम आपस में घुल–मिल जायें,

एक हो जायें, हम तुमसे दूर न रहें। 'हम चाकर गोविन्द के' कहते हैं सिक्ख गुरु। हम उसके चाकर हो जायें। तो विराट से नाता जोड़ो। भक्ति विराट से सम्बन्ध है, विराट से प्रेम है। तुम कहो मेरे सद्‌गुरु, मेरे ओशो, मेरे प्रभु, मेरा यह विराट आकाश!

क्षुद्र की तुम चिन्ता ही छोड़ो। ज्ञानी और कर्मयोगी क्षुद्र की चिन्ता करते हैं, भक्त क्षुद्र की बात ही नहीं उठाता। वह तो कहता है 'मेरे तो गिरिधर गोपाल'। परमात्मा से ही नाता जुड़ गया और जब परमात्मा से नाता जुड़ गया, विराट से जुड़ के तुम भी विराट हो गए।

चन्द्रशेखर भारती, मार्ग तो एक ही है, वह है भक्ति का मार्ग। उसमें अहंकार कहीं आता ही नहीं। अहंकार भी उपयोग में आ जाता है, चाकर बन जाता है परमात्मा का। और तब वह भी सुन्दर हो जाता है। मैं कह रहा था न, अपनी परिधि को भी सुन्दर बनाओ। कन्टेनर को भी सुन्दर बनाओ, कन्टेन्ट्स तो सुन्दर हैं ही। तुम्हारे भीतर ब्रह्म विराजमान है, अब अपनी परिधि को उसका चाकर बन जाने दो– 'श्याम मने चाकर राखो जी'। क्षुद्र को विराट की नौकरी करने दो।

विराट से मोह लगाओ

प्रश्न–4: मैं भीतर खुद को देखने की कोशिश करता हूँ तो पाता हूँ कि धन, मकान, संपत्ति, प्रियजन आदि के विचार ही चलते रहते हैं। वस्तुओं के प्रति ममत्व और व्यक्तियों के प्रति मोह के कारण समाधि में प्रगति नहीं हो पा रही है। मेरा मन परिवार–सम्बन्धियों के प्रति मोह–माया से भरा रहता है। मैं क्या करूँ?

थोड़ा और जागो, थोड़ा ज्यादा चैतन्य बनो, थोड़ा अधिक होश से देखो। वस्तुओं को समझना आसान है कि मेरी नहीं हैं। वस्तुएँ पहले भी थीं, जब तुम नहीं थे तब भी थीं। 'मैं' और 'मेरा' का यह खेल एक ही चीज के एक्सटेंशन हैं। 'मैं' 'मेरे' के ऊपर टिका है। मैं नहीं कहता कि तुम मेरी पत्नी का भाव छोड़ो, कि मेरी वस्तु का भाव छोड़ो। मैं कहता हूँ कि इस 'मैं' के भाव को तुम विराट से जोड़ो। तब तुम्हारा 'मैं' भी सुन्दर हो जायेगा। अभी तुम्हारा 'मैं' भी दूषित हो गया है क्षुद्र के साथ जुड़कर। तो मैं नहीं कहता कि तुम इसके विपरीत चलो, इस मोह को त्यागो।

तुम एक ही बात करो तुम इस 'मैं' को थोड़ा और ऊपर उठने दो। केवल वस्तुओं और व्यक्तियों तक ही सीमित न रखो, परमात्मा से इसे जोड़ो। तुम कहो 'मेरा परमात्मा', तुम कहो 'मेरा अनहद नाद', तुम कहो 'मेरा दिव्य प्रकाश'। तुम उससे

जुड़ो। तुम क्षुद्र की चिन्ता ही मत करो, वे जहाँ हैं, जैसे हैं, वैसे उन्हें रहने दो। तुम विराट से प्रीति जोड़ो और तब तुम पाओगे कहीं कुछ करने जैसा है नहीं। न अहंकार को नष्ट करना है, न माया–मोह को नष्ट करना है। अतीत में मोह की भी बहुत निन्दा की गई। मैं तुम्हें इस निन्दा से मुक्त करना चाहता हूँ। न 'मैं' की निन्दा, न ही 'मेरे' की निन्दा। हाँ, इतना जरूर कहूँगा क्षुद्र से विराट की ओर चलना है, क्रमशः परिधि से केन्द्र की ओर चलना है, कन्टेनर से कन्टेन्ट्स की तरफ, फिर सुपर–कंटेन्ट की तरफ नजर करनी है। लेकिन फिर भी कन्टेनर या परिधि निन्दनीय नहीं है, वे भी उपयोगी हैं, वे भी सार्थक हैं तभी प्रकृति ने उनको बनाया। उनके प्रति भी सम्मान भाव से भरो।

अपने मोह को नष्ट नहीं करना है, उसे प्रभु से जोड़ना है। ओशो कहते हैं– 'प्रेम है द्वार प्रभु का'। यह प्रेम संसार से लग जाए तो मोह–ममता बन जाता है, गुरु से लग जाए तो श्रद्धा और परमात्मा से लग जाए तो पराभक्ति बन जाता है। कीचड़ को मिटाना नहीं है, उसमें बीज छिपे हैं कमल के, उन्हें विकसित करना है। मनुष्य की प्रकृति में ईश्वर होने की संभावना प्रसुप्त है, उसे वास्तविकता में रूपांतरित करना है। प्रेम की शक्ति अद्भुत है, जिससे जुड़ जाए, उसी जैसा हो जाता है।

बिना साधना के सिद्धि

प्रश्न–5ः योगियों को इतनी साधना कर–करके भी परमात्मा नहीं मिलता, फिर भक्तों को बिना श्रम के कैसे मिल जाता है?

–रामप्रसाद

रामप्रसाद, ऊपर वाले की कृपा से। राम के प्रसाद से। यह लतीफा सुनो–

सेठ चंदूलाल की फैक्ट्री के एक कर्मचारी ने उनकी तारीफ करते हुए कहा– मैंने सुना है कि जीवन को सफलतापूर्वक जीने के लिए श्रेष्ठ शारीरिक स्वास्थ्य, तीक्ष्ण बुद्धि, असाधारण प्रतिभा, अलौकिक सौंदर्य, वार्तालाप की मधुर कला, पैनी समझदारी, दूसरों को समझाने की योग्यता, भावनात्मक स्थिरता, परिश्रमी व्यक्तित्व, योजना बनाने में होशियारी, मैनेजमेंट की क्षमता, उच्च कोटि की शिक्षा, गणितीय ज्ञान, व्यवहारिकता, उदार हृदय, दयालुता, वैज्ञानिकता, सृजनात्मकता आदि कितनी ही महान गुणवत्ताओं की जरूरत होती है। किंतु.... सेठजी, आपने तो गजब कर दिया, इन सबके पूर्ण अभाव में भी मालिक, आखिरकार ऊपर वाले की कृपा से आप सफल हो ही गए!

आज इतना ही।

प्रवचन–9

परमात्मा का दर्शन कैसे?

प्रश्नसार

1. आदमी शराब क्यों पीता है?
2. भगवान को कैसे देखा जाए?
3. सच्चे और झूठे धर्म में भेद?
4. करुणा भाव धर्म के विरुद्ध?

प्रश्न–1: एक महिला ने पूछा है कि स्वामीजी मेरा घरवाला रोज शराब पीता है, मुझे और मेरे बच्चों को पीटता है। मैं और मेरे परिवार के सभी लोग उससे घृणा करते हैं, उसे समझाने की कोशिश करते हैं किंतु वह नहीं मानता, सारा मोहल्ला और कुनबा उससे परेशान है, हम लोग क्या करें?

इस बात को सोचो कि कोई आदमी शराब क्यों पीता है। उसकी जिन्दगी में दुख होंगे, उन दुखों को भुलाने के लिए, गम–गलत करने के लिए। बजाय इसके कि हम शराब पीने की मनाही करें, हम कुछ ऐसा इन्तजाम करने की कोशिश करें कि उस व्यक्ति के मन का जो दुःख है, पीड़ा है, विषाद है, निराशा है वह कम हो, वह समाप्त हो। यदि वह सुखी हो जाए तो फिर क्यों शराब पीएगा, क्योंकि शराब का गुणधर्म है भुलाना, जब हम दुखी होते है, तो शराब पीकर दुख को भूल जाते हैं, यदि हम सुखी होंगे तो सुख भूलना तो कोई भी नहीं चाहेगा।

तो मैं चाहूँगा कि आप उससे घृणा न करें, उसे उपदेश न दें, उसे समझाएँ नहीं। आप उसे प्रेम दें, सम्मान दें। वो जैसा है आप उसके प्रति प्रेमपूर्ण हो जाएँ, उसे नफरत की नजर से न देखें, बार–बार उस पर अंगुली ना उठाएँ। आपका प्रेम और सम्मान पाकर हो सकता है उसके जीवन में कुछ नई शुरुआत हो। जब हम किसी को आदर देते हैं तो वह व्यक्ति खुद भी सोचता है कि मैं सम्मान योग्य कैसे बना रहूँ, मैं कुछ ऐसा न करूं जिससे मेरा आदर समाप्त हो जाए। तो मैं आपसे चाहूँगा, आप घर में एक प्रेमपूर्ण वातावरण बनाएँ, एक सम्मानजनक वातावरण बनाएँ। जब वह व्यक्ति घर में खुशी से रहने लगेगा, जब वह प्रेम और आदर पाएगा, उसके मन से चिंताएँ कम होंगी, विषाद कम होंगे, वह स्वतः ही शराब छोड़ देगा। तो शराब छोड़ने का यह परोक्ष उपाय हो सकता है। सीधा किसी से कहो कि शराब छोड़ दो, वो नहीं छोड़ेगा, वो तो आप इतने सालों से करके देख ही चुकीं, उससे तो कुछ लाभ नहीं हुआ। अब जरा मेरी बात मान के देखो। शराब की बात ही मत उठाओ, तुम तो अपने पति को खूब प्रेम और आदर दो, अपने बच्चों से भी कहो कि पिता का आदर करें, परिवार के अन्य लोगों को भी समझाओ। तुम देखना धीरे–धीरे उनमें परिवर्तन आएगा और हो सके तो छः दिन का कार्यक्रम करने यहाँ भेज दो, ध्यान

समाधि। जब व्यक्ति यहाँ ध्यान करेगा तो स्वतः अनंदित हो जाएगा और आनंदित व्यक्ति फिर शराब नहीं पीता।

प्रश्न–2: मैं कॉलेज में पढ़ता हूँ, भगवान को देखना चाहता हूँ। कृपया बताइए कि क्या मैं मंदिर जाऊँ, ग्रंथों का पाठ करूँ, यज्ञ हवन करूँ, मंत्र जाप करूँ, तीर्थयात्रा करूँ, जंगल जाऊं या गंगा स्नान करूँ?

नहीं, इन सब से कुछ भी न होगा, दुनिया में करोड़ों–करोड़ों लोग यही कर रहे हैं लेकिन उनके जीवन में परमात्मा की झलक नहीं! अगर गंगा स्नान करने से परमात्मा मिलता होता तो सारी मछलियों को और मेंढकों को मिला गया होता। गंगा में कितनी मछलियाँ और मेंढ़क हैं। मछली, मेंढ़क ही नहीं, गंगा में बहुत मगरमच्छ भी हैं। सबने परमात्मा को पा लिया होता। न ही धर्म–शास्त्र पढ़ने से मिलता है। तुम तो केवल पढ़ते हो, दीमक और चूहे तो किताबों को खा ही जाते हैं। तुम ऊपर–ऊपर से ही पढ़ते हो, वे तो ग्रंथों के ज्ञान को पचाकर मांस–मज्जा बना लेते हैं, किंतु उनको भी प्रभु नहीं मिलता। जंगल में जाने से भी बत न बनेगी। वन में अरबों पशु–पंछी निवास करते हैं, उन्हें ईश्वर ज्ञान नहीं हुआ। तुम्हें कैसे हो जाएगा!

किन्हीं किताबों से न मिलेगा, परमात्मा क्या प्रिंटिंग–प्रेस में पैदा होता है? ईश्वर कहीं चर्चों–मंदिरों में कैद है क्या? वह तो परम मुक्त है, वह एक जगह बंद कैसे होगा? परमात्मा तो सर्वत्र है। लेकिन हमारे लिए ढूँढ़ना सबसे आसान कहाँ होगा? निकट की जगह में सुगम होगा। और निश्चित ही हमसे ज्यादा निकट हमारे और कौन है? तो क्यों न हम स्वंय के भीतर ही खोजें। अगर वह सर्वव्यापी है तो हमारे भीतर भी व्याप्त होगा, चलो हम अपने भीतर ही ढूँढ़ते हैं।

अंतर्यात्रा करनी होगी। अपने भीतर छिपे प्रभु को खोजने का नाम साधना है। ओशोधारा में छः दिवसीय 'ध्यान समाधि शिविर' में परमात्मा से साक्षात्कार होगा... लेकिन याद रखना कैलेन्डरों में छपे किन्हीं देवी–देवताओं से नहीं, वह जो तुम्हारे भीतर छुपा है, उस दिव्य चैतन्य से। वह आलोकित अनाहत नाद ही भगवान है। उसे जानने वाला भाग्यवान है।

आत्मा का परम रूप परम–आत्मा है, परमात्मा है। उसका स्वभाव द्रष्टा

है। वह सदा साक्षी है। अर्थात् वह कभी दृश्य नहीं बन सकता। द्रष्टा बनो, और उस अदृश्य को जान लो। इसके लिए निमंत्रण है... आओ और जानो। बातचीत में वक्त बरबाद न करो।

प्रश्न–3: सच्चे धर्म और झूठे धर्म का क्या अर्थ है?

थोड़ा कठिन सवाल है। मैं चार हिस्सों में बांटकर कहूं। चार प्रकार के झूठे धर्म दुनिया में प्रचलित हैं। पहला भय पर आधारित। वे धर्म जो डराते हैं, कहते हैं कि हमारी आज्ञा नहीं मानी तो नर्क जाना पड़ेगा, फिर यह कष्ट मिलेगा, यातना मिलेगी, जन्म–जन्म के चक्कर काटने पड़ेंगे। भय पैदा करते हैं। कहते हैं, हमारी बात मानो।

दूसरे प्रकार के धर्म लोभ पर आधारित हैं। वे कहते हैं कि अगर हमारी बात मानी तो स्वर्ग मिलेगा, पुरस्कार मिलेगा, फिर कल्पवृक्ष के नीचे बैठोगे। जो चाहोगे वही मिलेगा। सुन्दर अप्सराएं मिलेंगी। हमारी आज्ञा मानो।

तीसरे प्रकार के धर्म हैं अन्धविश्वासों पर आधारित, बेस्ड ऑन ब्लाइन्ड बिलीफ्स। मैं विस्तार में नहीं जाऊंगा। थोड़ा चिन्तन करेंगे तो समझ में आ जाएगा। बचपन से ही कुछ धारणाएं हमारे मन में ठूंस दी गई हैं। ज्योतिष, ग्रह–नक्षत्र, भाग्यविधाता, ईश्वर, पाप–पुण्य इत्यादि सब अन्धविश्वास से प्रेरित झूठ हैं।

चौथे प्रकार के धर्म विचार केन्द्रित धर्म हैं। किसी ने पूछा है कि जब कोई सृष्टि है तो ज़रूर किसी सृष्टा ने बनाई होगी। ये सज्जन अपने आप को बहुत बड़ा फिलॉसफर, दार्शनिक समझते होंगे। किन्तु ये विचारों में उलझे हुए हैं। दर्शनशास्त्र, फिलॉसफी, सोच–विचार, चिंतन–मनन, ये भी धर्म नहीं हैं। इन सवालों पर कल चर्चा करूंगा।

लेकिन दुनिया में ये चार प्रकार के प्रचलित धर्म हैं। फियर बेस्ड, ग्रीड बेस्ड, ब्लाइन्ड बिलीफ्स बेस्ड और फिलॉसफी बेस्ड। इनको मैं धर्म नहीं कहता। फिर मैं किसे धर्म कहता हूँ? जीवन के दूसरे चार बिन्दुओं को समझें जिन्हें मैं धर्म कहता हूँ। जीवन की, जीवंतता की, महाजीवन की खोज वास्तविक धर्म है। उसके चार आयाम संभव हैं।

आपने उपनिषद् में परमात्मा की एक परिभाषा सुनी होगी, सच्चिदानंद की।

यह तीन शब्दों की त्रिमूर्ति–सत्, चित्, आनन्द, इसमें मैं एक शब्द और जोड़ देना चाहता हूँ। परिभाषा थोड़ी और विस्तीर्ण हो जाएगी। सत्, चित्, प्रेम, आनन्द। इन चार शब्दों पर ध्यान दो। प्रथम– सत्य की खोज धर्म है। द्वितीय– ध्यान की अभीप्सा, चैतन्य का विकास धर्म है। प्रेम का परम रूप भक्ति है –तीसरा धर्म। और चौथा– सनातन आनन्द, परमानन्द की खोज धर्म है।

सत्य की खोज से मेरा अर्थ है, जैसे यूनान में महाअन्वेषी हुआ–सुकरात, सत्य का खोजी। जीवन का नियम क्या है, वह उसकी खोज करता है। चीन में महान सन्त लाओत्सु हुए। उन्होंने जो खोजा उसे नाम दिया है, ताओ। ताओ यानी जीवन का नियम। दि अल्टीमेट लॉ ऑफ लाइफ। पंतजलि उसे कहते हैं–ऋतम्भरा प्रज्ञा। दि सुप्रीम विज़डम। जीवन की समझ, जीवन में सत्य क्या है उसकी खोज, एक वैज्ञानिक दृष्टि के साथ। हाँ, विज्ञान में और धर्म में फर्क इतना है कि विज्ञान बाहर के पदार्थों की खोज करता है जबकि धर्म का खोजी अपने अन्तरतम की सच्चाई को खोजता है। उनकी दिशा अलग–अलग है, अन्वेषण का क्षेत्र भिन्न है, मगर दृष्टिकोण एक–सा है। विज्ञान सत्य को खोजता है, बाहर की प्रकृति के सत्य को, पदार्थ के सत्य को। लाओत्सु और सुकरात अपने भीतर के सत्य को खोजते हैं। तो पहला सच्चा धर्म, सत्य की खोज वाला धर्म है। धर्म का दूसरा सच्चा रूप है–चित् अर्थात् चैतन्य, कान्शसनेस की खोज। ध्यान उसकी विधि है, मेडिटेशन। इससे साक्षीभाव और शांति घटित होती है। विचारों का ऊहापोह समाप्त होता है। निर्विचार चैतन्य की दशा उपलब्ध होती है।

धर्म का तीसरा वास्तविक प्रकार–प्रेम का परम रूप भक्ति है। जीवन में हमने जो प्रेम किया, माता–पिता से, पति–पत्नी से, कि भाई–बहन या मित्र से, अथवा पौधे, पशु–पक्षी से प्रेम किया; जब भी हमने प्रेम किया, बड़ा सुख मिला। एक झलक मिली आनन्द की। जब इसी प्रेम को हम और विस्तार देते हैं, व्यक्ति से मुक्त होकर जब समष्टि के प्रति, 'दि होल एक्ज़िस्टेंस' सर्व के प्रति हमारा प्रेम हो जाता है, तो उसका नाम है भक्ति। भक्ति से मेरा तात्पर्य मंदिर में जाकर दीपक जलाने, अगरबत्ती जलाने और आरती उतारने, प्रार्थना करने से नहीं है। भक्ति से मेरा अर्थ है, प्रेम की परम दशा। प्रेम इतना बढ़े, इतना बढ़े कि सारे जगत के प्रति प्रेम हो

जाए। उसका नाम पराभक्ति है।

और धर्म का चौथा और अन्तिम रूप है, आनन्द की खोज। वह समाधि के द्वारा घटित होती है। अभी ओशोधारा के कार्यक्रम की हम चर्चा करते थे आनन्द प्रज्ञा, समाधि प्रज्ञा, ध्यान समाधि, सुरति समाधि। जब आप समाधि में डूबते हैं तब भीतर के आनन्द का पता चलता है। इस प्रकार ये जो चार खोजें हैं सत्य, चैतन्य, प्रेम व आनन्द की, इनकी खोज को मैं वास्तविक धर्म कहता हूँ।

प्रश्न–4ः संसार में किसी को दुःखी देखकर मैं दुःखी हो जाता हूँ। आँखें बरसने लगती हैं। मैं कुछ देने के काबिल तो नहीं हूँ। प्रायः मेरे भाव, मेरे विचार किसी से नहीं मिलते। समाज व संसार में ही जी रहा हूँ। मैं त्याग वगैरह को नहीं मानता। मानसिक रूप से धर्म के विरुद्ध ही हूँ।

नहीं, मैं आपको धर्म के विरुद्ध नहीं मानता। जो व्यक्ति दूसरे के दुःख को देखकर पीड़ित हो रहा है, वह संवेदनशील है। उसके हृदय में प्रेम है। नहीं, आप अपने आप को धर्म के विरुद्ध ना कहें। हाँ, सामान्य अर्थों में हो सकता है आप धर्म के विरुद्ध हों। आप मंदिर ना जाते हों, प्रार्थना ना करते हों, पूजा ना करते हों लेकिन मैं उसको धर्म कहता ही नहीं। हो सकता है स्वर्ग की आकांक्षा ना हो। नर्क से डरते ना हों। धर्मशास्त्र की बात ना मानते हों। लेकिन मैं तो उनकी धर्म में गिनती ही नहीं करता। मैंने जो चार कोटियां गिनाई हैं, उसमें से आप एक में फिट होते हैं। आपके हृदय में प्रेम है, संवेदनशीलता है, सेन्सिटीविटी है। इस प्रेम को और विकसित करें। दूसरे के द:ुख को देखकर दुखी होना ही पर्याप्त नहीं है, अब कुछ करना भी होगा। और सबसे पहले तो स्वयं आनन्दित होने की कला सीखनी होगी तभी हम दूसरे को भी आनन्दित कर पायेंगे। सिर्फ दुःखी होने से तो बात ना बनेगी।

समझो, किसी की टांग टूट गई है, वह रो रहा है और अस्पताल के बिस्तर पर लेटा है। उसके दुख से प्रभावित होकर डॉक्टर भी अपनी टांग तोड़ ले हथौड़ा मारकर, और दूसरे बिस्तर पर लेटकर रोने लगे तो इससे उस मरीज़ का तो कुछ भला नहीं होगा। डॉक्टर कहे मुझे तो बड़ी सिम्पैथी है देखो। तुम्हारी टांग टूटी देख कर मैंने भी अपनी तोड़ ली। मैं भी पड़ा रहूँगा यहीं। लेकिन इससे तो कुछ लाभ

नहीं होगा। बेहतर हो डॉक्टर अपना स्वास्थ्य कायम रखे और इस मरीज़ की सहायता करे। अवश्य इसको दुःख से बाहर निकालना है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हमें भी दुःख में गिर जाना है। कोई कीचड़ में फंसा है, दलदल में; उसे हम बाहर निकालेंगे, हाथ का सहारा देंगे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं हम भी दलदल में कूद जाएंगे।

ओशो के जीवन में एक बार बड़ी विचित्र घटना घटी। एक बार वे एक नदी के किनारे बैठे हुए थे। कोई युवक निराशा से ग्रस्त था, डिप्रेशन का शिकार था, और वह नदी में छलाँग लगाकर आत्महत्या करने के लिए आया था। वह तो एकदम से छलाँग लगाकर बाढ़ आई नदी में कूद गया।

इसके पहले की ओशो कुछ कर पाएं एक दूसरा आदमी जो नदी में घुटने–घुटने पानी में खड़ा था, वह आदमी तेजी से गहरे पानी में चला गया उस युवक को बचाने के लिए। वह ऑलरेडी नदी में था। ओशो तो किनारे बैठे हुए थे।

फिर बड़ी मुसीबत हो गई। उस आदमी को खुद ही तैरना नहीं आता था, जो बचाने गया था। वह डूबने वाला तो डूब ही रहा था। यह सज्जन भी चिल्लाने लगे कि बचाओ–बचाओ। फिर ओशो को कूदना पड़ा। दो को बचाना बहुत कठिन होता है। एक को बचाना फिर भी सरल था। बामुश्किल दोनों को बाहर निकालकर ओशो ने उसे डांटा कि तुम अजीब आदमी हो! जब तुमको तैरना नहीं आता था तो उसको बचाने क्यों कूद गए? उसने कहा 'मैं भावावेश में आ गया था। इसके दुःख से दुःखी हो गया। भूल ही गया था कि मुझे तैरना नहीं आता। मैं तो सदा उथले पानी में नहाता हूं।'

मैं आपसे कहना चाहता हूँ, दूसरे के दुःख से आपको दुःखी नहीं होना है। हाँ, सेन्सिटिव होना है, करुणा से भरना है, उसको बचाने का उपाय करना है और इसलिए आपको अच्छे से तैरना सीखना चाहिए। अगर सचमुच में आपके अन्दर पीड़ा है, और इस दुःखी दुनिया में थोड़ा–सा आनन्द बांटना चाहते हैं तो सबसे पहले तो आप स्वयं आनन्दित हो जाएं। हम दूसरों को वही दे सकते हैं जो हमारे पास है। अगर मेरे पास कांटे ही कांटे हैं और मैं कितने ही अच्छे इरादे रखूं कि सबको फूल भेंट दूँ, मगर मैं कैसे आपको फूल दूंगा... मेरे पास फूल होना तो चाहिए

ना! अगर कांटे मेरे पास हैं तो जाने–अनजाने मैं आपको भी कांटे ही चुभाऊंगा।

सबसे पहले तो मैं अपने जीवन को एक फूल कैसे बना लूँ, मेरा जीवन कैसे सुगन्धित हो जाए, इस पर विमर्श करें। ओशो की शिक्षा है परम 'स्वार्थ' की। उस स्वार्थ से ही फिर परमार्थ पैदा होता है। पहले तुम 'स्व' का अर्थ तो जानो। यह स्वार्थ शब्द बड़ा प्यारा है। इसका मतलब सेल्फिशनेस नहीं है। स्वार्थ का अर्थ है 'स्वयं का अर्थ'। अपने होने का प्रयोजन। अपने भीतर उस प्रेम और आनन्द के शिखर पर पहुँच जाओ। अपने भीतर ध्यान और समाधि और सत्य को खोजो। जब तुम्हारा जीवन सुगन्धित, आनन्दित हो जाएगा, तब जो भी तुम्हारे संपर्क में आएगा, तुम उसे भी कुछ दे सकोगे। पहले स्वयं पा लो। तुम्हारे स्वार्थ से फिर बड़ा परोपकार और बड़ा परमार्थ जन्मेगा।

तुम कहते हो कि मैं कुछ देने के काबिल नहीं हूँ। तो काबिल बनो। आगे लिखते हो कि प्रायः मेरे भाव, मेरे विचार किसी से नहीं मिलते। समाज व संसार में ही जी रहा हूँ। मैं त्याग वगैरह को नहीं मानता। मानसिक रूप से धर्म के विरुद्ध ही हूँ।

विचारों का ना मिलना शुभ लक्षण है, इससे पता चलता है कि तुम रूढ़िवादी नहीं हो, मौलिक चिंतन करते हो। समाज व संसार में तो सभी जीते हैं–राम और कृष्ण भी, महावीर और मोहम्मद भी, ईसा और ओशो भी। यह कोई गुनाह तो नहीं! जीवन प्रकृति से मिला खूबसूरत पुरस्कार है। खूब मजे से जीयो। त्याग–तपश्चर्या आदि मूढ़तापूर्ण, जीवन–विरोधी कृत्य हैं। जीवन को सम्यक्‌ढंग से जीने की कला है धर्म। त्याग धर्म–विरोधी है। तुम धर्म–विरोधी नहीं हो। तुम जिन्हें धर्म मानते हो, वे धर्म ही नहीं हैं। ओशो की एक किताब के शीर्षक से आज की चर्चा का समापन करता हूं–'जीवन ही है प्रभु, और न खोजना कहीं'।

धन्यवाद! शुभ रात्रि!
हरि ओम् तत्सत्।

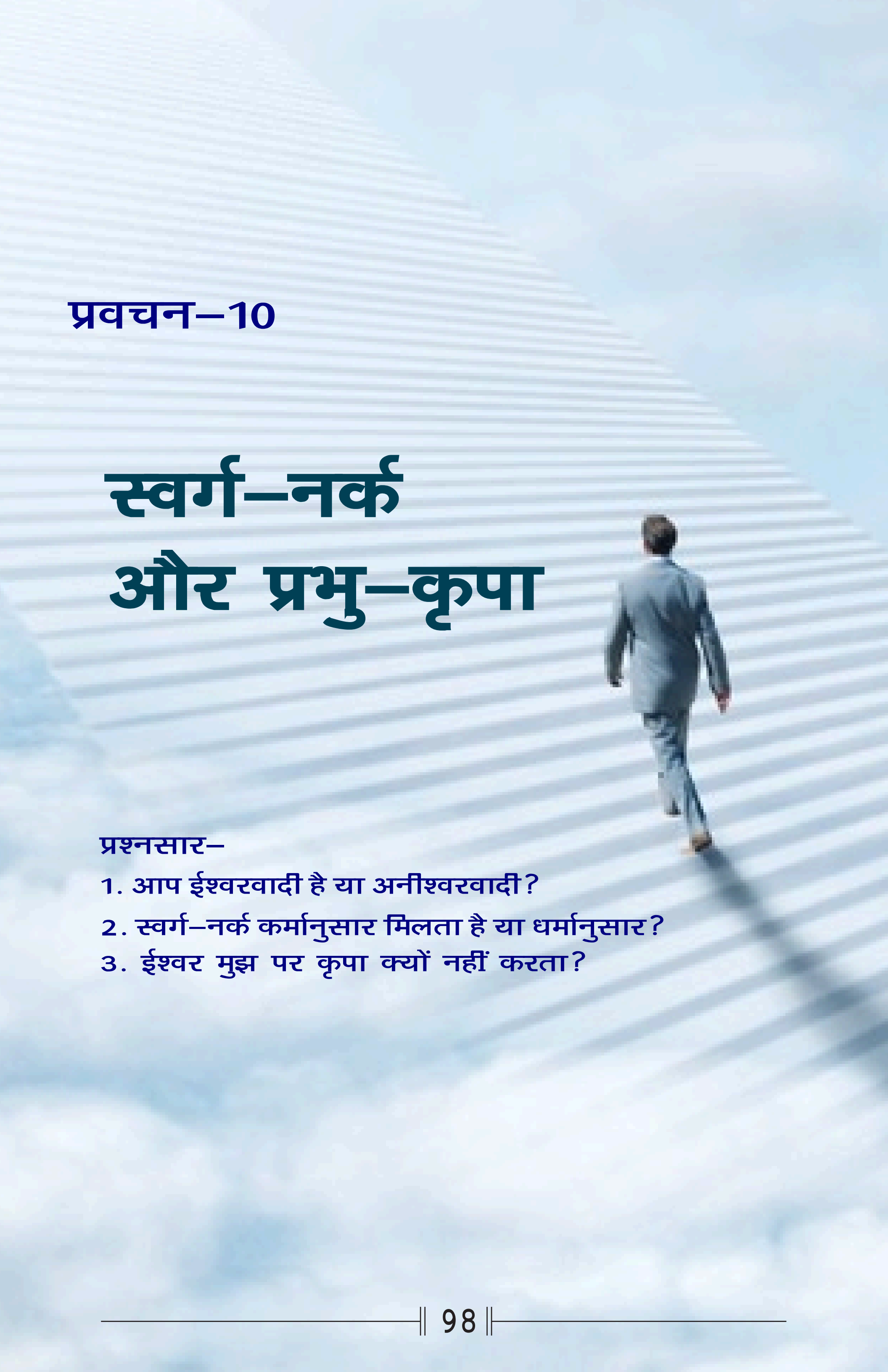

प्रवचन–10

स्वर्ग–नर्क और प्रभु–कृपा

प्रश्नसार–

1. आप ईश्वरवादी है या अनीश्वरवादी?
2. स्वर्ग–नर्क कर्मानुसार मिलता है या धर्मानुसार?
3. ईश्वर मुझ पर कृपा क्यों नहीं करता?

प्रश्न–1: आप ईश्वरवादी हैं अथवा या अनीश्वरवादी? सृष्टि को बनाने वाला कोई सृष्टा तो अवश्य ही होना चाहिए। आप क्या कहते हैं?

ना मैं ईश्वरवादी हूँ ना अनीश्वरवादी। मैं जीवन का सीधा–सीधा निरीक्षण करता हूं। मैं वादी–विवादी ही नहीं हूँ। मेरा कोई वाद या मत नहीं है। ना मैं आस्तिक हूँ, ना मैं नास्तिक। और मैं आपसे भी विनती करूंगा कृपया वाद–विवाद छोड़ें। ना वाद में पड़ें ना प्रतिवाद में। खोज करें, स्वयं खोजें। वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले बनें। एक साइन्टिफिक ऐटीट्यूड रखकर खोज में निकलें। जो भी सत्य है, हम पता लगाएंगे। हम मेहनत करेंगे, हम खोजेंगे। अगर ईश्वर है तो पता लग जाएगा कि ईश्वर है। नहीं है, तो हम स्वयं जानेंगे, पता लगाएंगे कि नहीं है। लेकिन हम पहले से कोई निर्णय न करेंगे।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति कभी पूर्वाग्रहपूर्ण निर्णय नहीं करता, पहले प्रयोग करता है। तो मैं यही आपसे विनती करूँगा, प्रयोगधर्मी बनें। मेरा भरोसा प्रयोग में, एक्सपेरिमेन्ट में है। जिसे हम आध्यात्मिक 'योग' साधना कहते हैं वह एक प्रकार का 'प्रयोग' ही है। हाँ, साइंटिस्ट की प्रयोगशाला बाहर होती है; अध्यात्म की प्रयोगशाला स्वयं की अन्तर्आत्मा होती है। हमें वहाँ जाकर खोजना होगा। खूब–खूब जागृत होकर पता लगाना होगा। तब हमें मालूम होगा कि वहाँ क्या है। तो मैं आपको कोई उत्तर नहीं दूँगा, ईश्वर है या नहीं? क्योंकि मेरा उत्तर आपके लिए बाधा बन जाएगा। आपकी एक धारणा बन जाएगी। फिर आप पक्षपातरहित होकर खोज न कर पाएंगे। इसलिए न तो ईश्वर को मानें और न ही ईश्वर के विरोध में हों। न आस्तिक बनें न नास्तिक बनें। दोनों की जरूरत नहीं है। खुले हृदय से, खुले मन से खोजबीन में लगें। जिस दिन आप जान लेंगे, उस दिन आप निर्णय पर पहुँचेंगे। पहले से मानने की ज़रूरत क्या है? मैं मानने के खिलाफ हूँ, जानने के पक्ष में हूँ।

और आपने कहा है कि इस सृष्टि को बनाने वाला कोई सृष्टा तो अवश्य होना चाहिए। आपकी यह बात सुनकर मुझे एक कहानी याद आ रही है।

एक बहुत अद्‌भुत आदमी हुआ, मुल्ला नसरुद्दीन, ओशो के प्रवचनों का हास्यपात्र। कहते हैं नसरुद्दीन के गांव में एक बार किसी घर में चोरी हो गई, पुलिस वाले और खुफिया विभाग वाले आए; लेकिन कोई सूत्र हाथ न लगा कि किसने चोरी की। काफी तलाश की गई, पता लगाया गया, कुछ भी खोज–खबर न लगी। लोगों ने कहा हमारे गांव में एक आदमी रहता है, नसरुद्दीन; बड़ा ज्ञानी है। एक बार उससे पूछो, शायद वह कुछ सुराग बता सके। पुलिस इंस्पेक्टर नसरुद्दीन के घर पहुँचा और बोला कि हमने सुना है कि आप बड़े पहुँचे हुए ज्ञानी हैं। बताइए फलां–फलां आदमी के घर चोरी हो गई, किसने चोरी की? आपको मालूम है क्या?

नसरुद्दीन ने कहा ऐसी कोई बात नहीं है जो मुझे ना मालूम हो। कुछ भी आप पूछिए,

सब मुझे मालूम है। पुलिस वाले बहुत प्रसन्न हुए। बोले–फिर कृपया बताइए, किसने चोरी की? नसरुद्दीन ने कहा–इतनी जल्दी नहीं बताऊँगा। आप अगले हफ्ते आना। ठीक मुहूर्त में ही कोई शुभ कार्य किया जाता है।

अगले हफ्ते आए पुलिस वाले। फिर रिक्वेस्ट की, बताइए किसने चोरी की है? नसरुद्दीन ने कहा यहाँ पब्लिकली नहीं बताऊँगा। अकेले में बताऊँगा। उन्होंने कहा ठीक है चलिए अकेले में बताइए। नसरुद्दीन ने कहा कि गांव के बाहर चलिए। सुनसान सड़क पर, अकेले में जाकर, कान में फुसफुसा कर बताऊँगा। सबके सामने नहीं बता सकता।

उस इंस्पेक्टर ने कहा ठीक। बेचारा बड़ा परेशान हो रहा था कि ये अजीब इंसान कैसा है! मगर... अगर इसको ज्ञान है तो चलो... कुछ तो पता चलेगा। गया गांव के बाहर, सुनसान सड़क पर। दो–तीन किलोमीटर चलते–चलते उसने कहा अब तो बताओ। नसरुद्दीन ने कहा अपना कान पास में लाओ। कान में फुसफुसाऊँगा। किसी को बताना मत। इंस्पेक्टर ने कहा–लो ठीक, अब कहो। नसरुद्दीन ने उसके कान में फुसफुसाया 'इंस्पेक्टर साहब जहाँ तक मैं समझता हूँ ये चोरी जरूर किसी चोर ने की है।'

तथाकथित आस्तिकों के तर्क भी ऐसे ही हैं। आप कह रहे हैं कि इस सृष्टि की रचना जरूर किसी सृष्टा ने की होगी। क्या यह नसरुद्दीन के तर्क से कुछ भिन्न है कि चोरी जरूर किसी चोर ने की है? सृष्टि जरूर किसी सृष्टा ने रची होगी! पर इससे कोई हल तो नहीं निकला, ये कोई उत्तर तो नहीं हुआ। दार्शनिक जो उत्तर देते हैं, ज़रा गौर से खोजबीन करना, उसमें से कोई उत्तर नहीं निकलता। वे सब मुल्ला नसरुद्दीन की तरह अफलातून हैं। गोल–गोल घुमाकर कुछ ऐसी बात कह रहे हैं, सुनने में लगता है कि बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। लेकिन उसमें कुछ भी सारतत्व नहीं है। सृष्टि की रचना जरूर किसी सृष्टा ने की होगी और चोरी जरूर किसी चोर ने की होगी। दोनों बातें बिल्कुल फिज़ूल हैं। उनका कोई अर्थ नहीं। मैं चाहूँगा कि कुछ भी मानने की ज़रूरत नहीं है। खोज करें, मैं आपको खोज में उत्सुक करना चाहता हूँ। कोई बंधा–बंधाया उत्तर आपको देना नहीं चाहता।

प्रश्न–2: यह प्रश्न भी इन्हीं सज्जन का है–स्वर्ग या नर्क कर्मानुसार मिलता है या धर्मानुसार?

मुल्ला नसरुद्दीन जी, आपने मान ही लिया कि स्वर्ग और नर्क हैं। अब प्रश्न सिर्फ इतना है कि कर्म करने से मिलता है या धर्म मानने से मिलता है? देखते हैं प्रश्न... इसमें पहले से ही एक प्रीजूडिस, एक पूर्वाग्रह है। एक बंधी–बंधाई अंधविश्वासपूर्ण मान्यता कि स्वर्ग या नर्क होते हैं। अब सवाल बस इतना है कि कर्म करने से मिलेगा कि धर्म मानने से मिलेगा। सर्वप्रथम मैं इस प्रश्नचिन्ह को थोड़ा आगे खिसकाना चाहता हूँ। धर्म–कर्म की बात छोड़ो, पहले तो स्वर्ग और नर्क स्वयं ही संदेहास्पद हैं! हैं कि नहीं? किसने आपसे कहा कि

स्वर्ग–नर्क होते हैं। बाद में पता लगाएंगे कि कैसे मिलते हैं। पहले तो इसके होने पर ही शक करो। एक वैज्ञानिक बुद्धि का तार्किक व्यक्ति हर चीज़ पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। सन्देह खड़ा करता है, किसी भी चीज़ को मानने की ज़रूरत नहीं। आप स्वर्ग नर्क को क्यों मानते हैं? ज़रूरत क्या है? और आपने जो पूछा है धर्म या कर्म के अनुसार.. तो सुनो यह घटना–

एक पादरी की कहानी आपसे कहूँ तो आपके ख्याल में आ जाएगा। एक पादरी ने रात को एक स्वप्न देखा। उसने देखा कि उसकी मृत्यु हो गई है और वह परलोक पहुँच गया है। वहाँ लम्बी लाइन लगी है। हिसाब–किताब हो रहा है, किसको स्वर्ग भेजा जाए और किसको नर्क। लाइन लगेगी ही... छः अरब आदमी धरती पर हैं। कोई दो–सवा दो लाख आदमी रोज़ मरते हैं। लम्बी क्यू लगी है और वह पादरी सुन रहा है कि लोगों से क्या–क्या सवाल पूछे जा रहे हैं। हिन्दुओं के चित्रगुप्त की तरह ईसाई मानते हैं कि सेंट पीटर धर्म–कर्म का हिसाब–किताब करते हैं, वे बही–खाते उलट–पलट के देख रहे हैं। एक ऐसा आदमी सेंट पीटर के काऊंटर पर खड़ा है जिसने सारे कर्म अच्छे किए। उसकी पूरी जिंदगी प्रेम और करुणा से, पुण्य कार्यों से भरी थी। लेकिन वह नास्तिक कभी चर्च नहीं गया और बाइबिल को नहीं मानता था।

और एक दूसरा आदमी भी उसके पीछे खड़ा था लाइन में जो निरन्तर चर्च जाता था, प्रार्थना करता था। बाइबिल को पढ़ता था, सारे धार्मिक क्रियाकांड विधिवत पूरे करता था, किन्तु उसके कर्म बड़े खराब थे। बेचारा पादरी पीछे खड़े होकर सुन रहा है। दोनों का लेखा–जोखा चल रहा है। और तभी अचानक... हिसाब–किताब पूरा होने से पहले ही उसकी नींद खुल जाती है और वह घबड़ाकर उठता है। वह हमेशा सोचता था कि जो लोग धार्मिक क्रियाकांड करते हैं, मंदिर और चर्च जाते हैं, ईश्वर को मानते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं, उन्हें स्वर्ग मिलेगा। लेकिन उसके मन में एक बड़ा प्रश्न खड़ा हो गया। एक अच्छा आदमी जो ईश्वर को नहीं मानता, उसका क्या होगा? एक बुरा आदमी जो ईश्वर को मानता है, उसका क्या होगा? इसकी जिन्दगी भर की पुरोहितगिरी, पादरी की जीवन–शैली सन्देहास्पद हो गई।

मैं भी आपके सामने वही प्रश्न खड़ा करना चाहता हूँ।

पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि स्वर्ग और नर्क कोई जियोग्राफिकल प्लेसेस नहीं हैं। हमारी मनःस्थितियाँ हैं, भौगोलिक परिस्थितयाँ नहीं हैं। और मरने के बाद नहीं मिलतीं, मरने के पहले ही हम उनमें जीते हैं। जो व्यक्ति शुभ कर्म कर रहा है, सत्यम् शिवम् सुन्दरम् से ओत–प्रोत जिसका जीवन है, वह यहीं स्वर्ग में जीता है। और जो व्यक्ति दूसरों को दुःख दे रहा है, और बेचारा खुद भी दुःखी है, वह यहीं नर्क भोग रहा है। मरने के उपरांत स्वर्ग और नर्क नहीं मिलते। हमारे कर्मों से यहीं सब होता है। हमारे कर्म, हमारे विचार एवं भाव, इन सबके संयोग से हमारे मन की सुखद या दुःखद स्थिति बनती है। उसका नाम ही स्वर्ग या नर्क है।

प्रश्न–3: यह भी इन्हीं सज्जन ने पूछा है–मैं जो चाहता हूँ वह मिलता क्यों नहीं? क्या ईश्वर मुझसे नाराज़ है। उसकी कृपा मुझ पर क्यों नहीं होती?

इसमें फिर देखें.. वही अन्धविश्वास, ईश्वर की मान्यता। दूसरी मान्यता कि वह किसी पर कृपा करता है, किसी पर नहीं करता। और तीसरी बात कि मैं जो चाहता हूँ वह मिलता क्यों नहीं? आप कुछ असम्भव चाहते होंगे। अपनी भूलें देखें। ईश्वर को बीच में लाने की जरूरत नहीं है। वह कृपा कर रहा है या नाराज है, इसको छोड़ें। आप अपने भीतर टटोलें। जो आप चाह रहे हैं, वो नहीं हो रहा तो ज़रूर आप ऐसा चाह रहे होंगे, जो हो ही नहीं सकता। मैं अगर क्षितिज को, होरिजन को पकड़ना चाहूँ और दौड़ूँ, कितना ही दौड़ूँ, क्या कभी क्षितिज को पकड़ पाऊँगा? दिखाई पड़ता है कि क्षितिज तीन–चार किलोमीटर दूर होगा जहाँ जमीन और आसमान मिलते हैं। लेकिन मैं कितना ही दौड़ूँ, कितना ही दौड़ूँ... मैं क्षितिज तक कभी नहीं पहुँच पाऊँगा। क्योंकि वास्तव में क्षितिज कहीं हैं नहीं। हमारी चाह में कुछ भूल होगी। अपनी चाहत को देखें। शायद आप कुछ परस्पर विपरीत चीजें चाह रहे होंगे।

थोड़े दिन पहले एक महिला आई मेरे पास। अपनी बहू का रोना रो रही थी कि बहू बड़ी घमण्डी है, अहंकारी है। परिवार में किसी के साथ उसकी पटती नहीं। बड़ा लड़ाई–झगड़ा चल रहा है और परिवार टूटने के करीब है। मुझे याद आया पाँच साल पहले भी यह महिला मेरे पास आई थी और कहा था कि स्वामीजी आप तो हर जगह घूमते रहते हैं। बेटे की शादी करनी है, कोई लड़की पसंद ही नहीं आ रही, मैं बहुत सुन्दर बहू की खोज में हूँ। अमीर खानदान की, खूब पढ़ी–लिखी हो, उंफची डिग्री हो, नौकरी करती हो तो और भी अच्छा। फिल्मी हीरोइन जैसी सुन्दर हो, रंग गोरा हो, लम्बाई इतनी हो, कुलीन घर की हो, इतना दहेज भी संग लाए। ये सारी बातें उसने मुझसे कहीं थीं। मैंने तो नहीं खोजी बहू... इस प्रकार का गोरखधंधा मैं नहीं करता... वरना बाद में गालियाँ खानी पड़ेंगी! मैंने कहा कि आप तो बहुत सुन्दर, पढ़ी–लिखी, उच्च घराने की, बड़े दहेज वाली, अति सुन्दर बहू खोज रही थी। आप जैसी खोज रही थीं वैसी मिली या नहीं?

कहने लगीं, है तो बहुत सुन्दर। लेकिन बड़ी घमण्डी है। मैंने कहा अब देखें आप दो विपरीत चीजें एक साथ चाह रही हैं। निश्चित रूप से आपकी बहू जितनी सुन्दर होगी उतनी ही अहंकारी होगी। जितनी पढ़ी–लिखी बहू होगी उसके सामने सास उतनी ही अनपढ़–गंवार हो जाएगी। पढ़े–लिखे या अनपढ़ होना तो रिलेटिव टर्म्स हैं ना! समझो कि सास मैट्रिक पास थी। अपने ज़माने में बड़ी शिक्षित कहलाती थी। लेकिन अब बहू पी.एच. डी. आ गई तो उसके सामने मैट्रिक पास सास तो अनपढ़ गँवार हो गई। 'आप गृहकार्य में दक्ष बहू खोज रही थीं', मैंने पूछा 'आपको बहू मिली गृहकार्य में दक्ष।' उन्होंने कहा हाँ। मैंने कहा कि अब इस बात को समझो जितनी दक्ष बहू होगी उतनी ही इगोइस्टिक होगी। आपसे

ज्यादा अच्छा भोजन पकाती है, घर सजाती है, होशियार है तो आपको फिर चोट लगेगी कि बहू आपकी सुनती नहीं, वह क्यों आपकी सुने? वह पाक–कला में पोस्ट ग्रेजुएशन करके आई है, आपकी बात क्यों सुनेगी? उसको कॉन्टिनेंटल भोजन पकाने आते हैं, वह सास के कहे अनुसार भोजन क्यों बनाएगी? फिर विवाद खड़ा होगा। हम ऐसी विपरीत चीज़ें इकट्ठी चाहते हैं जो एक साथ संभव ही नहीं। बिल्कुल फिल्म अभिनेत्री सी सुन्दर, गृहकार्यों में दक्ष, उच्च डिग्रियों वाली और बड़ी विनम्र हो, रोज सास के पैर दबाए। हमारी आकांक्षा ऐसी नामुमकिन है कि वैसा हो नहीं सकता। सूरज निकले, पर अंधेरा रहे.....!

कुछ लोग आते हैं, कहते हैं बेटे से बहुत परेशान हैं, बिल्कुल आज्ञाकारी नहीं है। दूसरे सज्जन आते हैं, वे कहते हैं हमारा बेटा मेन्टली रिटार्डेड है, बिल्कुल बुद्धू है, अपने मन से कोई काम कर ही नहीं सकता। अब देखें ये लोग क्या चाह रहे हैं? बेटा क्यों आज्ञाकारी नहीं है? क्योंकि वह प्रतिभाशाली है, जीनियस है। जो बेटा बुद्धिमान और कुशल चिंतक होगा वह आज्ञाकारी क्यों होगा? कोई भी प्रतिभाशाली बेटा आज्ञाकारी नहीं होता और अगर बेटा बुद्धू है तो वह आज्ञाकारी होगा।

हम चाह रहे हैं कि बेटा बड़ा जीनियस, बुद्धिमान हो और आज्ञाकारी भी हो। हम असम्भव की चाहना कर रहे हैं। ये दोनों बातें एक साथ सम्भव नहीं हैं। बुद्धिमान बेटा विद्रोही होगा। बुद्धि का लक्षण ही है, रिबेलियस होना। वह अपने ढ़ंग से सोचेगा। वह अपनी दृष्टि से चीज़ों को देखेगा। वह रूढ़िवादी और परम्परावादी नहीं होगा। वह माँ–बाप की, पंडित–पुरोहितों की, शास्त्रों की नहीं सुनेगा। उसके पास अपनी बुद्धि है, वह खुद तय करेगा उसे क्या करना है? अपनी जिन्दगी के निर्णय वह स्वयं लेगा। आपकी सलाह नहीं मांगेगा। फिर आपको बड़ी दिक्कत होगी कि बेटा आज्ञाकारी नहीं है। तो आप तय कर लें आप क्या चाहते हैं, गोबर गणेश, बिल्कुल बुद्धू... जिसे कहो कि खड़े हो जाओ तो खड़ा हो जाए और कहो कि बैठ जाओ तो बैठ जाए। अपने मन से कुछ न कर पाए, वह बिल्कुल आज्ञाकारी होगा। फिर आप उसमें भी प्रसन्न नहीं होंगे कि बेटा बिल्कुल नालायक है। अक्ल नाम की चीज़ नहीं, लेकिन वह आज्ञाकारी होगा।

आप कह रहे हैं कि मैं जो चाहता हूँ वह मिलता क्यों नहीं? तो दो बातें देखना। पहली बात मैंने कही कि क्षितिज के समान आपकी आकांक्षा होगी जो कभी पूरी हो ही नहीं सकती। और दूसरा आपकी चाहना में कुछ ऐसी चीज़ होगी जिसमें दो विपरीत बातें एक साथ आप पाने की कोशिश कर रहे हैं जो नामुमकिन हैं। आप चाहते हैं कि तेज़ सूरज चमके और ठण्डी हवा चलती रहे। ऐसा नहीं होगा। आप चाहते हैं कि अच्छे घनघोर बादल छाए हों, वर्षा हो रही हो और जो कपड़े हमने सूखने डाले हैं वे भी ठीक समय पर सूख जाएं। विपरीत चीज़ें हम चाह रहे हैं। देखना अपनी चाहना को और तब आप पाएंगे इसमें ईश्वर की मर्जी, उसकी कृपा या उसकी नाराजगी का सवाल नहीं है; आपके चाहने में कहीं कुछ भूलचूक है।

चाहत का तीर जिस लक्ष्य की ओर है, आपकी नजर उस ओर है। मैं चाहता हूं आप उस ओर देखें जहाँ से तीर चला है.... वह आप स्वयं हैं।

तर्क, विज्ञान, धर्म एवं कला

चौथा प्रश्न– विज्ञान, धर्म एवं कला के विषय में ओशो का दृष्टिकोण समझाएं। मैं ओशो की विचित्र तर्कशक्ति से अति–प्रभावित हूं।

आप गलत बात से प्रभावित हो रहे हो। यद्यपि ओशो के विरोधी तक यह मानते हैं कि ओशो जैसा तार्किक विद्वान व्यक्ति सदियों–सदियों में होता होगा। लेकिन सावधान! मैं आपको बता दूं कि ओशो विद्वता एवं तर्क के सख्त खिलाफ हैं। भरोसा नहीं आता न? किंतु वास्तविकता यही है। वे कहते हैं– 'तर्क का कोई ठिकाना है! तर्क तो पत्नी भी नहीं होता, वेश्या जैसा होता है। किसी के भी साथ हो ले।'

मनुष्य के मन में तर्क का कांटा चुभा है, उसे निकालने के लिए ओशो दूसरे कांटे का सहारा लेते हैं। इसलिए स्मरण रहे कि वे कांटे के पक्षधर नहीं हैं। समस्त कांटों से मुक्तकर वे हमें मन के पार, आत्मलोक में ले जाना चाहते हैं। निश्चित ही वे शब्दों का प्रयोग करते हैं मगर उनका लक्ष्य निशब्द में ले जाना है। भाषा का उपयोग करते हैं ताकि मौन में डुबा सकें। उनकी तर्क–कला अनोखी है। वे तर्क से तर्क को काटकर निर्विचार शून्य में पहुंचा देते हैं।

एक बार ओशो ने यह दृष्टांत सुनाया–

'मैं सागर विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। उस विश्वविद्यालय का निर्माण किया सर हरिसिंह गौर ने। वे भारत के बहुत बड़े वकील थे। बड़े तर्क–शास्त्री थे। और भारत में ही उनकी वकालत नहीं थी। वे तीन दफ्तर रखते थे। एक पेकिंग में, एक दिल्ली में, एक लंदन में। सारी दुनिया में उनकी वकालत की शोहरत थी।

मैंने उनसे एक दिन कहा कि आपकी वकालत की शोहरत कितनी ही हो, वकील और वेश्या को मैं बराबर मानता हूं!

उन्होंने कहा, क्या कहते हो!

वे गुस्से में आ गए। वे संस्थापक थे विश्वविद्यालय के। प्रथम उपकुलपति थे। और मैं तो सिर्फ एक विद्यार्थी था। मैंने कहा कि मैं फिर कहता हूं कि वकील वेश्या होता है! अगर वेश्याएं नर्क जाती हैं, तो वकील उनके आगे–आगे झंडा लिए जाएंगे! और तुम पक्के– झंडा ऊंचा रहे हमारा– उन्हीं लोगों में रहोगे। उन्होंने कहा, तू बात कैसी करता है? तुझे यह भी सम्मान नहीं कि उपकुलपति से कैसे बोलना!

मैंने कहा, मैं वकील से बात कर रहा हूं, उपकुलपति कहां! मैं सर हरिसिंह गौर से बात कर रहा हूं।

वे कहने लगे, मैं मतलब नहीं समझा कि क्यों वकील को तू वेश्या के साथ गिनती करता है!

मैंने कहा, इसीलिए कि वकील को जो पैसा दे दे, उसके साथ। वह कहता है कि तुम्हीं जीत जाओगे।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दफा अपने वकील के पास गया। उसने अपना सारा मामला समझाया। और वकील ने कहा कि बिल्कुल मत घबड़ाओ। पांच हजार रुपए तुम्हारी फीस होगी। मामला खतरनाक है, मगर जीत निश्चित है।

उसने कहा, धन्यवाद। चलता हूं!

जाते कहां हो? फीस नहीं भरनी! काम नहीं मुझे देना!

उसने कहा कि जो मैंने वर्णन आपको दिया, यह मेरे विरोधी का वर्णन है। अगर उसकी जीत निश्चित है, तो लड़ना ही क्यों!

यह मुल्ला भी पहुंचा हुआ पुरुष है!

जब तुम कह रहे हो खुले आम कि इसमें जीत निश्चित ही है– यह तो मैं अपने विरोधी का पूरा का पूरा ब्यौरा बताया। अपना तो मैंने बताया ही नहीं! तो अब मेरी हार निश्चित ही है। अब पांच हजार और क्यों गंवाने! नमस्कार! तुम अपने घर भले, हम अपने घर भले!

वकील को भी चकमा दे गया। वकील ने भी सिर पर हाथ ठोंक लिया होगा। सोचा ही नहीं होगा कि यह भी हालत होगी! वह तो अपना मामला बताता तो उसमें भी वकील कहता कि जीत निश्चित है। आखिर दोनों ही तरफ के वकील कहते हैं, जीत निश्चित है! वकील को कहना ही पड़ता है कि जीत निश्चित है। तभी तो तुम्हारी जेबें खाली करवा पाता है।

तो मैंने कहा वकील की कोई निष्ठा होती है? उसका सत्य से कोई लगाव होता है? तो मैं उसकी वेश्या में गिनती क्यों न करूं! वेश्या तो अपनी देह ही बेचती है। वकील अपनी बुद्धि बेचता है। यह और गया–बीता है।

उन्होंने मेरी बात सुनी। आंख बंद कर ली। थोड़ी देर चुप रहे और कहा कि शायद तुम्हारी बात ठीक है। मुझे अपनी एक घटना याद आ गई। तुम्हें सुनाता हूं।

प्रीव्ही काउन्सिल में एक मुकदमा था, जयपुर नरेश का। मैं उनका वकील था। करोड़ों का मामला था। जायदाद का मामला था, जमीन का मामला था। और तुम जानते हो कि मुझे शराब पीने की आदत है। रात ज्यादा पी गया। दूसरे दिन जब गया अदालत में, तो नशा मेरा बिल्कुल टूटा नहीं था। कुछ न कुछ नशे की हवा बाकी रह गई थी। नशा कुछ झूलता रह गया था। सो मैं भूल गया कि मैं किसके पक्ष में हूं! सो मैं अपने मुवक्किल के खिलाफ बोल गया। और वह धुआंधार दो घंटे बोला! और मैं चौंकूं जरूर कि न्यायाधीश भी हैरान होकर सुन रहे हैं! मेरा मुवक्किल तो बिल्कुल पीला पड़ गया है! और वह जो विरोधी है, वह भी चकित है! विरोधी का वकील भी एकदम ठंडा है, वह भी कुछ बोलता नहीं! और मेरा जो असिस्टेंट है, वह बार–बार मेरा कोट खींचे! मामला क्या है!

जब चाय पीने की बीच में छुट्टी मिली, तो मेरे असिस्टेंट ने कहा कि जान ले ली आपने! आप अपने ही आदमी के खिलाफ बोल गए! बरबाद कर दिया केस! अब जीत मुश्किल है।

हरिसिंह ने कहा, क्या मामला है, तू मुझे ठीक से समझा। बात क्या है! रात ज्यादा पी गया एक पार्टी में। उसका नशा अब तक उतरा नहीं। मुझे फिर से समझा।

तो उसने बताया कि मामला यह है कि जो–जो आप बोले हो, यह तो विपरीत पक्ष को बोलना था! और वे भी इतनी कुशलता से नहीं बोल सकते, जिस कुशलता से आप बोले हो। इसलिए तो बेचारे वे खड़े थे चौंके हुए, कि अब हमें तो बोलने को कुछ बचा ही नहीं। और मुकदमा तो गया अपने हाथ से!

कहा, मत घबड़ाओ। हरिसिंह गौर ने कहा, मत घबड़ाओ। और जब चाय पीने के बाद फिर अदालत शुरू हुई, तो उन्होंने कहा कि न्यायाधीश महोदय! अब तक मैंने वे दलीलें दीं, जो मेरे विरोधी वकील देने वाले होंगे। अब मैं उनका खंडन शुरू करता हूं!

और खंडन किया उन्होंने। और मुकदमा जीते! तो वे मुझसे बोले कि शायद तुम ठीक कहते हो। यह काम भी वेश्या का ही है।' (जो बोलैं तो हरिकथा–8 से संकलित)

विज्ञान, धर्म एवं कला के विषय में आपने पूछा है। ओशो कहते हैं कि विज्ञान प्राथमिक है, विचार–विश्लेषण के द्वारा पदार्थ का अनुसंधान है। धर्म उच्चतर है, निर्विचार–संश्लेषण के द्वारा आत्मा का अनुभव है। और; कला सर्वोपरि है, वह आंतरिक अनुभूति आत्मज्ञान की बाह्य अभिव्यक्ति है। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' –इन तीन शब्दों में परमात्मा की परिभाषा उपनिषद के ऋषियों ने की है। इन तीनों गुणों के साक्षात् अवतार बनकर बीसवीं सदी में आए सद्गुरु ओशो। उनका जीवन संक्षेप में सत्य की खोज, शिवत्व की अनुभूति तथा सौंदर्य की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

उपनिषद के ऋषियों ने 'कलैव ब्रह्म' की भी घोषणा की है, अर्थात् कला ही ब्रह्म है। ओशो जीवन के महान कलाकार हैं। ओशो की कला किसी एक आयाम में सीमित नहीं है, वरन सारी जिंदगी ही कलात्मक है। उनकी कुछ किताबों के शीर्षक हैं– 'जीवन ही है प्रभु और ना खोजना कहीं' 'जीवन की खोज' 'जीवन रहस्य' 'जीवन संगीत' 'जीवन दर्शन' 'जीवन क्रांति के सूत्र'। स्मरण रहे, हम जन्म से लेकर मृत्यु तक के विस्तार को जीवन कहते हैं, ओशो की दृष्टि में यह परमजीवन का एक लघु अंश मात्र है। आभास मात्र है। असली जीवन तो अमृत तत्व की अनुभूति है। उनकी कुछ अन्य पुस्तकों के नाम इसी ओर संकेत करते हैं– 'अमृत द्वार' 'अमृत कण' 'अमृत की दिशा' 'अमृत वर्षा' 'अमीं झरत बिगसत कंवल' 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' और 'फ्राम डैथ टू डैथलैशनेस'।

ओशो न केवल जिंदगी जीने की कला सिखाते हैं, वरन मरने की कला भी सिखाते हैं। उनकी दृष्टि में ये दो विपरीत बातें नहीं, एक ही महाकला के दो पहलू हैं। आनंद, शांति, प्रेम और धन्यवाद भाव से भरे हुए देहत्याग कैसे किया जाए, मौत का भी उत्सव कैसे मनाया

जाए; ओशो ने यह दर्शन सिर्फ प्रवचन देकर ही नहीं समझाया, बल्कि स्वयं की अभूतपूर्व मृत्यु द्वारा इस सत्य को स्थापित भी कर दिखाया। उन्होंने अपनी समाधि का निर्माण खुद ही करा लिया था, उस पर क्या लिखना है यह भी बता दिया था। इस संदर्भ में उनकी कुछ किताबों के नाम उल्लेखनीय हैं–'दि आर्ट ऑफ डाईंग' 'अनटिल यू डाई' 'मैं मृत्यु सिखाता हूं' 'मरौ हे जोगी मरौ'।

धर्म है जीवन जीने की कला, इस क्रांतिकारी सत्य के प्रथम उद्घोषक तो ओशो ही हैं; यद्यपि अब अन्य तथाकथित धर्मगुरु भी ऐसा कहने लगे हैं। तथापि 'मरने की कला' सिखाने का साहस अब तक इन मिथ्या–मनीषियों में नहीं आ पाया है।

ओशो के नजरिये में कला के दो प्रकार हैं। सामान्यतः जिसे कला पुकारा जाता है उसमें से अधिकांश दमित चित्त वृत्तियों व कुंठित भावनाओं का विसर्जन है। पिकासो के चित्र, पश्चिमी रॉक म्युजिक और आधुनिकता के नाम पर प्रचलित कविता आदि सृजन कम, विक्षिप्तता का विसर्जन अधिक हैं। यह पागलपन 'कलैव ब्रह्म' की परिभाषा में नहीं आता। दूसरे तरह की कला वस्तुतः परमात्मा को जानकर घटती है। संत कबीर की अटपटी भाषा में कहे गए दोहे, मीराबाई का अनसीखा नृत्य, अनपढ़ रैदास साहब के अनूठे वचन असली कला के उदाहरण हैं। नानक के सहज स्फुरित सधुक्कड़ी भाषा के गीतों के संग थिरक रहे बाला–मरदाना के साज धरती पर बजे अनुपम संगीत हैं।

साधारण कवि को प्रभु का ज्ञान नहीं होता, किंतु वह भाषा के अलंकरण, व्याकरण और छंद में निष्णात होता है। शायद, कभी–कभार उसे कुछ भीतर की झलक मिल जाती है, सौंदर्यानुभूति हो जाती है। कभी रोशनी के किरण उसकी कुरूप अंधेरी घाटी में प्रवेश कर जाती है।

ऋषि वह है जिसने हिमालय के उज्ज्वल पर्वत शिखर पर ही निवास स्थान बना लिया है। चाहे वह प्रगट करने में कुशल न हो परंतु वह 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को जानता है। वह सत्–चित्–आनंद में जीता है। ओशो एक ऐसे ही ऋषि हैं। उनके संपूर्ण जीवन से सत्यं शिवं सुन्दरम् ही प्रगट होता है। उनके मुखारविंद से झरा गद्य भी पद्य से कम नहीं होता। उनके शब्दों में मौन–संगीत गूंजता है। उनके मौन में शून्य बोलता है। उनके चलने–फिरने में परमात्मा का प्रसाद ही गति करता है। वे और उनकी कला पृथक–पृथक नहीं हैं। बहु–आयामी कला स्वयं ही ओशो में साकार हुई, रूपायित हुई है।